भारतीय साहित्य के निर्माता

पंडित श्रीराम शर्मा

रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

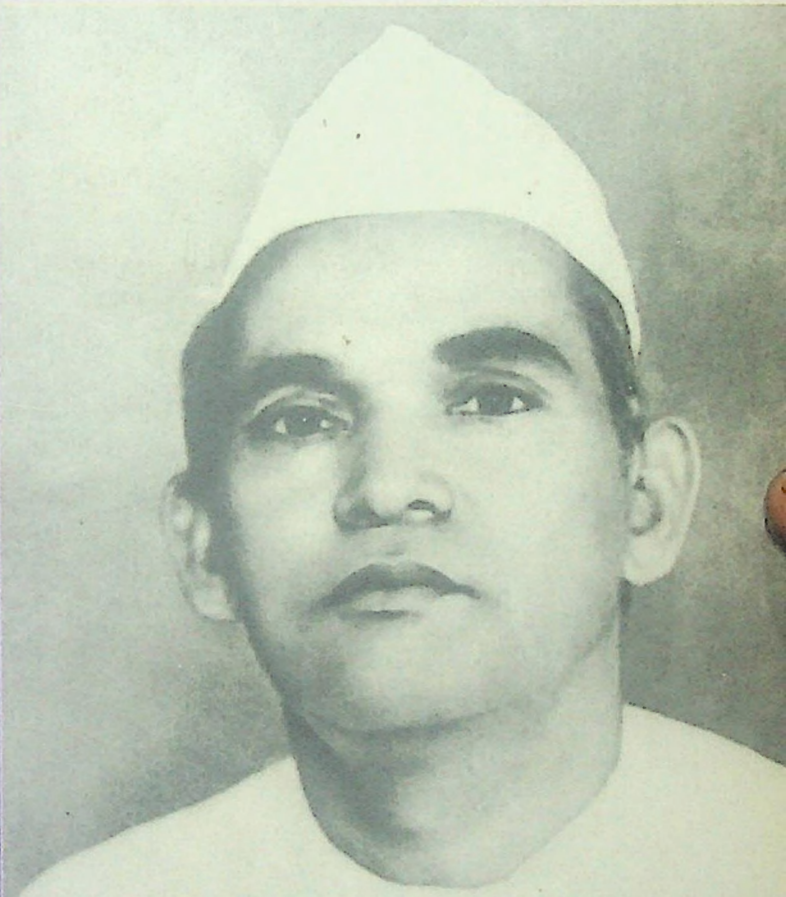

पंडित श्रीराम शर्मा

भारतीय साहित्य के निर्माता

पंडित श्रीराम शर्मा

रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

साहित्य अकादेमी

Pandit Shriram Sharma : A monograph in Hindi by Ram Gopal Sharma 'Dinesh' on the modern Hindi writer, Sahitya Akademi, New Delhi, (2005), Rs. 25.00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 2005 ई.

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर 560 002

चेन्नई कार्यालय

मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग (द्वितीय तल), 443 (304), अन्ना सालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

ISBN 81-260-2044-X

मूल्य : पच्चीस रुपये

शब्द संयोजक : क्वालिटी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 032

मुद्रक : विकास कंप्यूटर ऐंड प्रिंटर्स, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

दो शब्द	7
व्यक्ति श्रीराम शर्मा	9
सेवा और संघर्ष	18
साहित्य-सर्जना	26
शिकार साहित्य : तीन धाराएँ	31
रेखाचित्र : बोलती प्रतिमा	57
आत्मकथा-प्रधान संस्मरण	66
कहानियाँ और बाल-साहित्य	81
सर्जना के अन्य आयाम	86
चिन्तन और विश्वास	94
परिशिष्ट : आधार-सामग्री	102

दो शब्द

पंडित श्रीराम शर्मा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में शिकार-साहित्य तथा रेखाचित्र और संस्मरण के पुरस्कर्ता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी दीर्घकालीन सेवा अविस्मरणीय है। ऐसे बहुत कम साहित्यकार हैं, जिनकी लेखनी उसी ऊर्जा से चलती रही हो, जिस ऊर्जा से उन्होंने देश की स्वतंत्रता के संग्राम में भाग लिया हो।

दैनिक *प्रताप* के संपादक के रूप में पंडित श्रीराम शर्मा ने सन् 1920 ई. में पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया। गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ जिस त्याग और सेवा-भाव से उन्होंने कार्य किया, वह सर्वविदित है। सन् 1938 में वे तत्कालीन अत्यंत लोकप्रिय मासिक *विशाल भारत* के संपादक बने और दो दशकों तक वे अवैतनिक रूप से यह सेवा-कार्य करते रहे। 'प्रताप' दैनिक से *विशाल भारत* मासिक के संपादन तक की दीर्घकालीन साहित्य-यात्रा में वे अनेक विद्वानों, साहित्यकारों, पाठकों आदि के प्रेम और सम्मान के पात्र हो गए।

पंडित जी ने अनेक श्रेष्ठ रचनाओं से हिन्दी-साहित्य का भण्डार गौरवान्वित किया। शिकार-संबंधी *शिकार, प्राणों का सौदा* तथा *जंगल के जीव* उनके इस क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ तो हैं ही, हिन्दी में शिकार-साहित्य के प्रतिष्ठापक ग्रंथ भी माने जाते हैं। उनकी अन्य दर्जनों रचनाएँ, जो पुस्तकाकार या पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं—हिन्दी की अपने समय की बेजोड़ कृतियाँ हैं।

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में वर्षों सपरिवार कारागार-वास करनेवाले अप्रतिम क्रांतिकारी योद्धा पंडित श्रीराम शर्मा त्याग, बलिदान, ग्राम-सेवा, कृपि-ज्ञान, दलितों और किसानों की पक्षधरता आदि के लिए जीवन-भर सुविख्यात रहे। डॉ राजेंद्र प्रसाद, पंडित मदनमोहन मालवीय, *सैनिक*-संपादक पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, पंडित गोविन्द वल्लभ पंत, डॉ. कैलाश नाथ काटजू, आचार्य विनोवा भावे, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. संपूर्णानंद

आदि तत्कालीन देश-सेवकों के वे अत्यंत विश्वास-पात्र देश-सेवी साथी थे। साहित्यकारों में आचार्य पद्मसिंह शर्मा (संपादक जी के नाम से प्रसिद्ध), आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य क्षितिमोहन सेन, पंडित हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, देशबंधु ऐण्ड्रूज, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी आदि उनके अत्यंत आत्मीय मित्र और प्रशंसक थे।

सन् 1996 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय में पंडित श्रीराम शर्मा की जन्म-शताब्दी मनाई जा चुकी है तथा उनकी कृतियों पर शोधोपाधि के लिए यत्र-तत्र कार्य भी हुआ है, किन्तु अभी बहुत कुछ होना अपेक्षित है। मैंने पंडित जी के साथ एक दशक तक *विशाल भारत* के लिए उनके सहायक के रूप में कार्य किया था और अपनी आँखों से इस महान् साहित्यकार में एक ऐसी महान् आदर्श आत्मा के दर्शन किए थे, जिसकी अब किसी साहित्यकार, पत्रकार या नेता में कल्पना भी संभव नहीं है।

मैं साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष डॉ. गोपीचंद नारंग, कार्यकारिणी-समिति और विशेषतः डॉ. परमानंद पांचाल का कृतज्ञ हूँ, जो मुझे पंडित श्रीराम शर्मा-जैसी पवित्रात्मा साहित्य, विभूति पर यह लघु पुस्तक लिखने का सु-अवसर मिला। मैंने अपने इस कार्य को परिश्रम-पूर्वक पूर्णतः प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है। आशा है, सुधीजन मेरे परिश्रम को अपनी शुभाशंसा से सार्थक बनाएँगे।

दिल्ली, 1 जनवरी 2004 —रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

1

व्यक्ति श्रीराम शर्मा

श्रीराम शर्मा एक ऐसे व्यक्ति का नाम है, जिसके एक हाथ में कलम रहती थी और दूसरे हाथ में बंदूक़। सरस्वती और कालिका कराली का अद्‌भुत समन्वय था उनके व्यक्तित्व में। सत्य, शिव और शक्ति की साक्षात् प्रतिमा, जिसके दर्शन मात्र से तन-मन में सात्विक भावों की ऊर्जस्वित तरंगें जाग उठें। मझौला क़द, गोल चेहरा, चौड़ा ललाट, पारदर्शिनी चमकती आँखें! हाथ और चरख़े का प्रत्यक्ष मेल दर्शाती दुग्ध-धवल खादी की धोती, कुर्ता और टोपी! आचरण में गाँधी और सुभाष का ऐसा चमत्कारी दर्शन कि किसी को उन्हें पहचानने में कभी भूल न हो! जिन लोगों ने उन्हें देखा-समझा, जो लोग उनके संपर्क में आए, उनके साथ एक दिन भी रहे, उनकी वाणी का शब्द-रस पान किया, उनके व्याख्यान सुने, उनकी रचनाएँ पढ़ीं, खेतों में उन्हें काम करते देखा, उनके श्रम से *रेतीली* बंजर ज़मीन में सिर तक लहराती गेहूँ की बालियाँ देखीं, दोनों हाथों से दो बंदूक़ें सँभाले शेर का सामना करते निहारा—वे क्या उन्हें कभी भूल पाए और यदि वे अभी इस संसार की शोभा बढ़ा रहे हैं तो क्या उन्हें भूल पाएँगे? आसेतु-हिमालय अखंड भारत के लिए तन-मन और बुद्धि से अपना सर्वस्व होम देनेवाले इस महापुरुष को सर्वप्रथम जब मैंने देखा, तब कारागृह की काल-कोठरी से सपरिवार वह आज़ादी का संदेश लिए बाहर आया ही था! 'जय हिन्द' का नारा उसके मुख-मंडल पर उल्लास की रेखाओं में अंकित हो रहा था और आगे-पीछे चल रही थी अपार जन-भीड़ उसके शब्दों को दुहराती।

ऐसे विचित्र व्यक्तित्व के धनी पंडित श्रीराम शर्मा का जन्म मैनपुरी जनपद के 'किरथरा' नामक ग्राम में, जो मक्खनपुर और फ़ीरोज़ाबाद के पास पड़ता है, बुधवार 23 मार्च को सन् 1896 ई. में (तदनुसार फाल्गुन शुक्ल पक्ष 13 बुधवार को संवत् 1952 वि. में) हुआ था।[1] उनके पिता का नाम पंडित रेवतीराम शर्मा

था। पंडित श्रीराम शर्मा तीन भाई थे—बड़े पंडित बाला प्रसाद शर्मा और छोटे पंडित जगन्नाथ शर्मा। माता का वात्सल्य ही पंडित श्रीराम शर्मा के पालन-पोषण में अधिक सहायक हुआ, क्योंकि उनके पिता पंडित रेवतीराम शर्मा का स्वर्गवास 35-36 वर्ष की अल्पायु में सन् 1906 ई. में ही हो गया था। उस समय श्रीराम शर्मा केवल नौ वर्ष के थे। (*संस्मरण-सीकर*, पृष्ठ 9)। अनुज पंडित जगन्नाथ शर्मा भी (अविवाहित) कम आयु में ही स्वर्ग-सिधार गए थे। अतः अग्रज बाला प्रसाद शर्मा ने परिवार को आर्थिक सहारा देने के लिए कुछ समय तक गुरुकुल काँगड़ी में अध्यापन का कार्य किया। किरथरा में उनके परिवार की 145 बीघा खेती बची थीं,[2] जिसे सँभालने वे गाँव लौट आए थे और आजीवन अपने परिवार तथा पंडित श्रीराम शर्मा के लिए एक बड़ा सहारा रहे।

अग्रज बाला प्रसाद शर्मा ने घर पर ही श्रीराम शर्मा की प्रारंभिक शिक्षा का स्वयं शुभारंभ किया था। तत्पश्चात् उन्हें मक्खनपुर के प्राइमरी स्कूल में प्रवेश मिला। हाईस्कूल की शिक्षा के लिए उन्हें खुर्जा भेजा गया, जहाँ वे सभी कक्षाओं में उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण होते रहे। सन् 1917 ई. में इंटरमीडिएट की परीक्षा उन्होंने आगरा कॉलेज से उत्तीर्ण की और फिर वहीं बी. ए. की शिक्षा के लिए भर्ती हुए। बी. ए. करने के बाद उन्होंने तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था के अनुसार एम. ए. (अर्थशास्त्र) और एल. एल. बी. में एक साथ प्रवेश लिया। किन्तु, उच्च शिक्षा पाकर वकील बनना उनकी नियति नहीं थी। उनके हृदय में देश-प्रेम के जो सात्त्विक भाव उमंगित हो रहे थे, उनके प्रवाह में पंडित जी की भावी जीवन-दिशा ही बदल गई, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

पंडित श्रीराम शर्मा कश्यप गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे, जो पूर्णतः शाकाहारी और आस्तिक रहा है। बचपन में ही पिता की छाया छिन जाने के कारण उन्हें माँ के संघर्ष-मय जीवन में जो कुछ देखने को मिला, उससे वे पूर्णतः आस्थावान् हो गए थे। बचपन से ही उनके बड़े भाई और माता से ऐसे संस्कार मिलते रहे थे, जो उनके भावी जीवन-निर्माण में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुए। इन संस्कारों का ही परिणाम था कि वे धीरे-धीरे सहनशील, साहसी, पराक्रमी और आत्म-निर्भर बनते जा रहे थे। जिन दिनों वे आगरा कॉलेज में पढ़ रहे थे, उन दिनों मक्खनपुर से आगरा का रेल-किराया मात्र 'साढ़े पाँच आना' था, किन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर वे प्रति शनिवार पैदल ही गाँव की यात्रा करते थे और वापिस भी पैदल चलकर ही आगरा पहुँचते थे।

पंडित जी की मिडिल स्कूल की शिक्षा उर्दू भाषा के साथ हुई थी। इंटरमीडिएट परीक्षा में भी उन्होंने उर्दू भाषा पढ़ी थी। अतः हिन्दी के साथ-साथ उन्हें उर्दू

भाषा का अच्छा ज्ञान था। अध्ययन-काल में अंग्रेज़ी-साहित्य प्रमुख विषय न रहने पर भी वे स्वाध्याय के द्वारा अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य—दोनों के प्रकांड विद्वान् बन गए थे। विश्व की कई भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान उन्होंने स्वाध्याय के माध्यम से ही प्राप्त किया था।

पारिवारिक संस्कारों के अनुरूप ही पंडितजी को जीवन-संगिनी मिलीं—लक्ष्मीदेवी। वे सचमुच लक्ष्मीदेवी ही थीं—सर्वपूज्या। अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति की सनातन आस्था-युक्त महिला थीं वे। उनके साथ अपने विवाह में पंडित श्रीराम शर्मा ने पूर्णतः आदर्शवाद का पालन किया था। श्वसुर पंडित हेतराम शर्मा तो आर्यसमाजी थे ही, किन्तु श्रीराम शर्मा ने सनातनी होते हुए भी बारात में पाँच व्यक्ति ले जाकर और दहेज न लेकर केवल सवा रुपया—नारियल में ब्याह किया था।

श्रीमती लक्ष्मीदेवी से पंडित श्रीराम शर्मा के आठ संतानें हुईं। ब्रजेश, राकेश, दिनेश, तीन पुत्रों की असमय मृत्यु हो गई। पाँच अन्य संतानें हैं कमला शर्मा, शारदा और डॉ. सरोजिनी (पुत्रियाँ) तथा डॉ. रमेश कुमार शर्मा एवं उदयन शर्मा (पुत्र)। इनमें से डॉ. सरोजिनी शर्मा एवं उदयन शर्मा का कुछ समय पूर्व निधन हो चुका है। सुश्री कमला शर्मा आगरा में एक कन्या विद्यालय की प्रधानाचार्य थीं, जो अब स्वर्ग सिधार चुकी हैं। डॉ. रमेश कुमार शर्मा हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक-आलोचक हैं, जो कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर से हिन्दी विभाग के आचार्य अध्यक्ष एवं संकाय के अधिष्ठाता आदि पदों से सेवा-निवृत्त होकर अब आगरा में रहते हैं। वहाँ वे नागरी प्रचारिणी सभा (आगरा) तथा भारतीय हिन्दी परिषद् (इलाहाबाद) के अध्यक्ष रहकर हिन्दी भाषा की उल्लेखनीय सेवा करते रहे हैं। आलोचना के क्षेत्र में उनका प्रदेय अत्यंत प्रशंसनीय है। डॉ. सरोजिनी केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा में आचार्य के पद से सेवा-निवृत्त हुई थीं। उदयन शर्मा हिन्दी की युवा पीढ़ी के सुप्रसिद्ध पत्रकार थे। *धर्मयुग, रविवार, राष्ट्रीय सहारा, अमर उजाला* आदि पत्रों के संपादन में उनका अविस्मरणीय योगदान रहा। हिन्दी पत्रकारिता को उनसे बहुत आशाएँ थीं, किन्तु दिल्ली में असमय उनका निधन हो गया। डॉ. रमेश कुमार शर्मा की पत्नी डॉ. विमला मुंशी भी हिन्दी की आचार्य एवं लेखिका हैं। उनकी एक मात्र संतान डॉ मंजरी शर्मा का विवाह आगरा के ही एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ है और वह भी नाटक विधा की आलोचना के लिए प्रसिद्ध हैं।

आगरा कॉलेज में एम. ए. और एल. एल. बी के छात्र के रूप में अध्ययन करते हुए श्रीराम शर्मा ब्रिटिश-शासन विरोधी गतिविधियों में लिप्त होने लगे थे। फलतः उनके गाँव किरथरा पर पुलिस की कोप-दृष्टि धीरे-धीरे बढ़ती चली गई। सन् 1938 में वे आगरा के वल्कावस्ती मुहल्ले के एक मकान में सपरिवार आ

गए, जिसे भी धीरे-धीरे पुलिस का कोप-भाजन बनना पड़ा। इसी मकान में रहकर उन्होंने स्वाधीनता-संग्राम के विविध कार्यक्रम चलाए तथा *विशाल भारत* (मासिक, कलकत्ता) का संपादन किया। यहीं से वे अनेक बार जेल गए। सन् 42 के आंदोलन में उनकी नेतृत्व-पूर्ण जो सक्रिय भूमिका थी, उसके कारण बड़े भाई, पुत्री कमला और पुत्र रमेश सहित वे जेल में डाल दिए गए थे। आगे के अध्यायों में इस संदर्भ में यथास्थान हम चर्चा करेंगे।

पंडित श्रीराम शर्मा को कृषि का ज्ञान विरासत में मिला था। जब उत्तर प्रदेश में प्रथम स्वतंत्र सरकार पंडित गोविन्दवल्लभ पंत के मुख्य-मंत्रित्व में बनी, तब पंडित श्रीराम शर्मा को 'उत्तर प्रदेश कृषि परिषद्' का अध्यक्ष बनाया गया था। उन्होंने प्रदेश में कृषि के विकास के लिए कई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ दी थीं और उन्हीं में से एक योजना थी बंजर पड़े भू-खंडों का कृषि के लिए विकास। लाल-फ़ीताशाही में यह योजना हास्यास्पद मानी गई, तो पंडितजी ने एक चुनौती के रूप में गाँव उसायनी, कस्वा एत्मादपुर (जिला आगरा) में एक नाले के कारण कई एकड़ वीरान-बंजर पड़ी ज़मीन को अपने ज्ञान, अनुभव और श्रम से ऐसा उपजाऊ बनाकर दिखाया कि बड़े-बड़े कृषि-विज्ञानी चमत्कृत हो गए थे। यह भूखंड सरकार ने पंडित जी के नाम पर दिया था, जो आजकल 'उसायनी का नवजीवन फार्म' के नाम से जाना जाता है। यहाँ खड़े घने वृक्ष और लहलहाते खेत पंडित जी के अद्भुत कृषि-पांडित्य का परिचय देते हैं। वृद्धावस्था तक बल्काबस्ती और यह नवजीवन फ़ार्म ही पंडित जी के निवास का मुख्य स्थान रहे।

बचपन से ही पंडित श्रीराम शर्मा शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखने में विश्वास रखते थे। वे नियमित रूप से नित्य व्यायाम करते, परिश्रम के सभी घरेलू कार्यों में भाग लेते, दौड़-धूप के सभी खेल खेलते और दूर-दूर तक पद-यात्रा करते थे। गिल्ली-डंडा और कबड्डी उनके प्रिय खेल थे। कबड्डी में तो उन्हें बड़े-बड़े लड़के भी हरा नहीं पाते थे। उन्हीं के शब्दों में...''कबड्डी का भी बचपन और स्कूली जीवन में इतना अभ्यास था कि कभी भी इन पंक्तियों के लेखक को कोई मार न सका।[4] एक बार उस समय के ई. सी. हाई स्कूल खुर्जा और संस्कृत पाठशाला के कबड्डी मैच में स्कूल की ओर से दो दिनों तक अकेला ही मुझे खेलना पड़ा और खेल अनिर्णीत ही रहा। थकावट तब क्या थी, क्या मैं जानता था?''[5]

पंडित जी को बंदूक़ चलाने का भी बहुत शौक़ था। वे दौड़कर निशाने पर गोली मार देने में सिद्धहस्त थे। 'नवजीवन फ़ार्म' जहाँ बना, वहाँ नाले की दोनों ओर कई मील तक रेतीली ज़मीन का सुनसान वातावरण रहता था। इस नाले में और आस-पास दूर तक चोर, ठग, डाकू आदि छिपे रहते थे। अंग्रेज़ी

शासन-काल में यहाँ चारों ओर अकथनीय भय और आतंक छाया रहता था। आगरा से टूँडला होकर फ़ीरोज़ाबाद की ओर जानेवाली सड़क पर शाम होते ही यात्रा करना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। कहानी नहीं, यह सत्य था कि जब कोई निकलता था, तब उसे लूटने के लिए नाले में छिपे लुटेरे अचानक बाहर आ जाते थे। उस समय यह लोकगीत प्रसिद्ध हो गया था :

"बैरंगिया नाला जबर जोर।
जहँ रहत साधु के वेश चोर।
धग्-धगा धन्न धन् धीन धीन
झट एक-एक पै तीन-तीन।"

ये पंक्तियाँ कई रूपों में प्रसिद्ध हैं, किन्तु अर्थ यही है कि एक-एक यात्री को तीन-तीन लुटेरे दबोच लेते थे। जब पंडित श्रीराम शर्मा ने यहाँ कृषि योजना के निमित्त अपना तंबू ताना, तो एक रात डाकुओं का एक गिरोह आ पहुँचा और भाँति-भाँति से पंडितजी को धमकाने लगा, ताकि वे वहाँ से चले जाएँ। पंडितजी के साथ 'मामा' नाम से संबोधित हरिभजन शर्मा रहते थे। वे भी बहुत बहादुर और बंदूक़ के निशाने में दक्ष थे। पंडित जी ने उन डाकुओं से कहा, "अगर तुम लोग मुझे भगाने पर ही तुले हो तो सुनो, मैं ऐसे भागने वाला नहीं हूँ।" इतना कह कर उन्होंने तंबू में जाकर अपनी बंदूक़ लाने का आदेश हरभजन को दिया। बंदूक़ हाथ में आते ही पंडितजी ने हवा में गोली दाग़ दी। दस्यु-सरदार हँस पड़ा, "पंडित जी! क्षमा करें, आप यहीं रहें, हम ही चले जाते हैं।" और वही हुआ। ऐसे अनेक अवसर आए, जब पंडित जी ने अकेले ही डाकुओं का सामना किया। मैं अनेक बार पंडित जी के साथ 'नवजीवन फ़ार्म' बनने से पहले और उसके बाद भी इस बियाबान एकांत सुनसान में रहा हूँ और पंडित जी की बहादुरी, साहस तथा उत्साह के ऐसे अनेक कारनामे अपनी आँखों से देखे हैं। उनके इन्हीं गुणों का परिणाम था कि डेढ़ सौ एकड़ रेतीली भूमि पर एक ऐसे 'फ़ार्म' का विकास हुआ जिसके प्रत्यक्षदर्शी चकित रह जाते थे। उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री चौधरी चरण सिंह तथा अन्य कई सर्वोदयी नेता फ़ार्म (आश्रम) के प्रवेश द्वार पर जूते उतार देते थे, कहते थे—यह आश्रम एक मंदिर है, यहाँ जूते पहनकर जाना अधर्म है।[6] प्रसिद्ध कवि (स्व.) रामइक़बाल सिंह 'राकेश' के शब्दों में पंडितजी के कृषि-ज्ञान, वनस्पति-विज्ञान एवं प्रकृति-प्रेम का श्रम की कसौटी पर कसा 'नवजीवन फ़ार्म' का यह चित्रण अब भी उनके पुरुषार्थ का साक्षी है :

"वहाँ की भूमि जगह-जगह बबूल, नीम आम, अशोक, अर्जुन, सागौन, शिरीष

और कदंब के हरे और चिकने पत्तेवाले वृक्षों से सुशोभित थी। नीबू, आँवला, मिसेज बक और मिसेज वट के झाड़ों और रमणीय कुंजों से वह मनोहर प्रतीत होती थी। केले, पपीते, शहतूत, सेजना, शीशम और अमलतास के वृक्ष 'सरसराती हुई हवा से कंपित होकर वहाँ की शोभा का विस्तार करते थे। खेतों में ज्वार के पौधे लहलहा रहे थे। झाड़ियों में मयूर-मयूरियों के बीच में, पंख खड़े होकर नाचते दिखाई पड़ते थे।"[7]

इन पंक्तियों से पंडितजी की अभिरुचियों का सहज में अनुमान लगाया जा सकता है। आगे जब हम उनकी साहित्य-साधना पर प्रकाश डालेंगे, तब आप स्वयं इस तथ्य के साक्षी बनेंगे कि साहित्यकार का यथार्थवाद या प्रगतिवाद अगर सच्ची आस्था से जुड़ा है, तो वह वायवी नहीं होता है, बल्कि श्रम और शब्द दोनों का समन्वय होता है। पंडित जी ने कई बार यह बात कही थी। श्री राम इक़बालसिंह 'राकेश' के ही शब्दों में, "कृषि और साहित्य के समन्वय की चर्चा करते हुए शर्मा जी ने मुझसे कहा था कि प्राचीन काल में गीता के प्रवक्ता श्रीकृष्ण ने वृंदावन की गोचर भूमियों में गाएँ चराई थीं, उनके अग्रज बलराम ने हल चलाए थे और उन्होंने भारतवासियों की आर्य संस्कृति का अमर संदेश सुनाया था। कृषि की उन्नति के लिए विदेहराज जनक ने भी हल चलाए थे और तब आम्र-कानन मिथिला में सीता का आविर्भाव हुआ था। इस्लाम धर्म के संस्थापक हज़रत मुहम्मद साहब और विश्वबंधुत्व के संदेश-वाहक प्रभु ईसा मसीह बकरियाँ और भेड़ें चराया करते थे।** अगर कबीर जुलाहे का कार्य न करते होते तो उनकी चिरस्मरणीय कविता 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' आज पढ़ने को नहीं मिलती।"[8]

कृषि अर्थात् श्रम में तन-मन से रमे पंडित श्रीराम शर्मा स्वस्थ शरीर की साधना के प्रबल समर्थक बचपन से ही थे। 'नवजीवन फ़ार्म' पर तो उन्होंने बाद में 'अखाड़ा' बनवाया, उससे पहले वे वल्काबस्ती के मकान के आँगन में अपने हाथ से लगाए अमरूद के पेड़ के नीचे 'अखाड़ा' बनवा चुके थे और उदयन पुत्र को शैशव से ही पहलवानी की शिक्षा दिलाते रहे थे, जिसके लिए उन्होंने पंजाब से एक पहलवान बुलाकर बहुत समय तक कुश्ती-शिक्षक के रूप में रखा था। वे स्वयं भी एक अच्छे पहलवान थे और कुश्ती के सभी दाँव-पेंच जानते थे। कुश्ती-समारोहों में उन्हें अध्यक्षता के लिए उसी सम्मान से बुलाया जाता था, जिस सम्मान से कृषि समारोहों और साहित्यिक सभाओं में प्रतिष्ठित किया जाता था।

स्वभाव से पंडितजी जितने गंभीर थे, उतने ही सरल और उदार भी। छल-कपट और असत्य आचरण करनेवालों से उन्हें बहुत चिढ़ थी। छोटे-से-छोटे व्यक्ति को भी वे प्यार और आदर देते थे। मुझे यहाँ अपने साथ घटित एक

प्रसंग याद आता है। मेरा मन-मस्तिष्क इस देव-पुरुष के इस व्यवहार की स्मृति में अब भी शत्-शत् नमन कर उठता है। बात उस समय की है, जब पंडित जी, उत्तर-प्रदेश में प्रथम स्वतंत्र सरकार के गठन के समय अनेक उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थे और 'लक्खी' कहलानेवाले बटेश्वर के प्रसिद्ध 'शिवतीर्थ मेला' के अध्यक्ष थे। पूर्णमासी की रात्रि में प्रतिवर्ष वहाँ लाख-दो-लाख श्रोताओं के समक्ष कवि-सम्मेलन होता था। मैंने युवावस्था में प्रवेश की किया था। एक कविता पढ़ी। मंच से पंडित जी ने 'वाह-वाह ' तो की ही, प्रातः अपने 'तंबू' पर बुलाकर नाम-पता भी पूछा। दूसरे दिन जीप लेकर मेरे घर जा पहुँचे। टूटी खाट पर बैठकर मेरी दादी अमृतादेवी मिश्रा के हाथों से मथी छाछ का गुड़ के साथ पान किया और मुझे आगरा भेजने का दादी से वचन ले गए। गाँव के लोगों की भीड़ मेरे आँगन में लग गई थी और लोग हतप्रभ थे कि अपने समय का इतना बड़ा और प्रसिद्ध आदमी और ऐसी सरलता-उदारता! किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पंडित जी में कहीं किसी प्रकार की कठोरता नहीं थी। वे अत्यधिक स्वाभिमानी और अपने विश्वासों के लिए सर्वस्व निछावरःकर देनेवाले व्यक्ति थे। वे क्रोधी नहीं थे, किन्तु किसी को अनुशासन के बाहर काम करते समय उनका डर लगता था। वे दो टूक बात करने वाले स्पष्टवादी व्यक्ति थे। आगरा के साहित्यिक परिवार में उनके स्वभाव और आचरण की पवित्रता की धाक थी।

पंडित जी का स्वभाव व्यवहार और चिन्तन समान रूप से आदर्श थे। आज तो इस प्रकार के किसी व्यक्ति की कल्पना भी असंभव है। वे स्वाधीनता संग्राम में भाग लेते समय अनेक बार जेल गए, वहाँ अनेक कठोर यातनाएँ झेलीं, अनेक प्रकार से उनके जीवन-साधन अंग्रेज़ सरकार ने नष्ट किए, किन्तु उन्होंने कभी हार तो मानी ही नहीं; बल्कि जब देश आज़ाद हुआ, तब स्वाधीनता सैनिकों को मिलनेवाली सभी सुविधाओं को यह कहते हुए ठुकरा दिया कि मैंने मातृभूमि का ऋण चुकाया है, उसके बदले में कुछ भी लेना मेरी दृष्टि मेरे लिए अधर्म है। एक प्रसंग का मैं स्वयं साक्षी हूँ। तत्कालीन गृहमंत्री श्री जगन प्रसाद रावत पंडित जी के अध्ययन-कक्ष में आए। वे *विशाल भारत* के संपादकीय लिखने के लिए तैयारी कर रहे थे। रावत जी ने एक फ़ार्म पंडित जी को देते हुए उस पर हस्ताक्षर कर देने का आग्रह किया। वह फ़ार्म स्वतंत्रता-सेनानियों के पुत्रों के लिए बिना परीक्षा आदि की औपचारिकताएँ पूरी किए 'प्रांतीय पुलिस सेवा' में नियुक्ति के लिए था। रावत जी रमेश जी(उनके बड़े पुत्र) की इस पद पर नियुक्ति के लिए उनकी स्वीकृति चाहते थे। पंडित जी ने उस फ़ार्म के चार टुकड़े किए और रमेश जी को बुलाकर वे टुकड़े थमाते हुए कहा कि स्वतंत्रता-सेनानी के नाते नहीं, अपनी

योग्यता के बल पर जो बनना चाहो बनो। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण उनके अंतिम दिनों का है। जब वे अपनी आँखों की रोशनी खोकर अस्पताल में रोग-शय्या पर थे और तत्कालीन मुख्यमंत्री-कोष से उनके इलाज के लिए प्राप्त चेक उनकी बड़ी पुत्री कमलाजी ने उन्हें दिया था, जिसे उन्होंने सादर अस्वीकार कर दिया था। इन उदाहरणों से पंडित जी के आदर्श-मय जीवन का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

पंडित जी मूर्तिपूजक नहीं थे, किन्तु सनातन धर्म में पूर्ण विश्वास करते थे। तुलसीदास· उनके प्रिय कवि थे। आँखों की रोशनी चली जाने के पश्चात् भी वे किसी-न-किसी को अपने पास बिठाकर *रामचरितमानस* का पाठ सुना करते थे। फलतः अधिकांश रामचरितमानस उन्हें कंठस्थ हो गई थी। शिकार में रुचि होते हुए भी वे पूर्णतः शाकाहारी थे। रोटी, शाक-सब्ज़ी, दही-दूध, रायता और फलों में आम एवं संतरा उनके प्रिय भोजन थे। अचारों में टेंटी का अचार और आलू से अधिक रतालू उन्हें बेहद पसंद थे। जब उन्हें मज़ाक़ सूझता था तो हँसते हुए मित्रों से पूछने लगते थे कि, "क्या भैंस का दूध पीते हो?...तभी भैंस-बुद्धि हो।"

चरख़ा चलाना और हाथ के कते सूत के धोती-कुर्ता-टोपी में रहना उनको पसन्द था। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करना उन्हें बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। वे नियमित जीवन में विश्वास करते थे। सूर्योदय से पूर्व चारपाई छोड़कर नित्य कर्म से निवट घूमने निकल जाना और समय पर स्नानादि व्यायाम भोजन आदि से निवृत्त होकर अपनी दिनचर्या को पूरा 'करना उनका स्वभाव था। पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर मुख्य घटनादि की टिप्पणियाँ नोट करना और अपने पुस्तक-संग्रहालय में नवीनतम ग्रंथों को ख़रीद कर रखना-पढ़ना, उन्हें पसंद था। साहित्य, विज्ञान, समाजशास्त्र, कृषि, राजनीति और संगीत में उनकी जितनी गहरी रुचि थी, उतना ही इनका गंभीर ज्ञान भी उन्हें था। प्राचीन भारतीय साहित्य से लेकर बहुप्रसिद्ध पाश्चात्य साहित्यिक कृतियों एवं प्रवृत्तियों तक तो उनकी आश्चर्यजनक पहुँच थी ही, पाश्चात्य एवं भारतीय संगीत के भी वे अद्‌भुत ज्ञाता थे। सितार और तबला बजाने में वे सिद्धहस्त थे। फ़ोटोग्राफ़ी का भी उन्हें बेहद शौक़ था, इसलिए क़लम, बंदूक़, कैमरा और सितार के कारण वे चतुर्भुज माने जाते थे।

ऐसे बहुत कम साहित्यकार होते हैं, जो साहित्य-सेवा करते हुए सामाजिक और पारिवारिक उत्तरदायित्वों का सम्यक् रूप से निर्वाह कर पाते हैं। पंडितजी में ये गुण दूसरों के लिए उस समय तो आदर्श थे ही, इस समय और भविष्य

में भी सदा आदर्श रहेंगे।

शिक्षा-दीक्षा के समय से जीवन के अंत तक पंडित जी ने क्या-क्या कार्य किए एवं नौकरी आदि के अलावा उनकी सेवा के प्रमुख क्षेत्र कौन-कौन-से रहे, जिनके कारण वे सबसे अलग प्रकार का ऐसा साहित्य लिख सके, जो हिन्दी-साहित्येतिहास का सदा गौरव-पूर्ण अध्याय रहेगा—यह सब यथा-संदर्भ आगे प्रस्तुत किया जाएगा। यहाँ केवल शेष वह प्रसंग है, जो इस अविस्मरणीय महान् हिन्दी साहित्यकार को अंतिम यात्रा पर ले जाता है।

फ़रवरी 1967 ई. में पंडित जी ने कहा था कि ज्योतिष के अनुसार 'मार्केश' लग जाने के कारण मेरी मृत्यु का योग है। यदि पहली मार्च निकल गई तो फिर आँखों के बिना भी बहुत समय तक इस संसार में बहुत कुछ देखना-सुनना होगा। लेकिन नहीं निकला फ़रवरी मास। अचानक 27 फ़रवरी 1967 ई. को महाकाल ने इस महापुरुष की हृदय-गति रोक दी। पहले से ही बाहरी दुनिया के अभिशापों को न देख सकने के कारण बंद हो जानेवाली उनकी अंतर्भेदी आँखें ज्यों-की-त्यों खुली रह गईं। एक विचित्र संयोग देखिए कि उसी तारीख 27 फ़रवरी को उसी समय (सायं काल) छह वर्ष पश्चात् सन् 1973 ई. में उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी का भी महाप्रयाण हुआ। यों पंडित जी शरीर से तो यह संसार छोड़ गए, किन्तु अपने महान् कार्यों एवं आदर्शों के कारण वे सदा अमर रहेंगे।

संदर्भ

1. उनकी जन्म-कुंडली के आधार पर, जो लेखक के पास है।
2. पूर्वज बड़े ज़मींदार थे, किन्तु पंडित रेवतीराम शर्मा के पहले ही अधिकांश ज़मीन अधिकार से निकल गई थी।
3. *संस्मरण-सीकर,* पंडित श्रीराम शर्मा, पृ. 9
4. कबड्डी में 'हराने' को 'मारना' कहते हैं।
5. *संस्मरण-सीकर,* पृ. 7
6. लेखक स्वयं साक्षी रहा है।
7. 'लोह पुरुष पंडित श्रीराम शर्मा', लेख : श्री राम इक़बालसिंह 'राकेश'
8. श्री राम इक़बालसिंह 'राकेश' का वही लेख।

2

सेवा और संघर्ष

पंडित श्रीराम शर्मा के जीवन में सेवा और संघर्ष के कई रूप और मोड़ मिलते हैं। नौ वर्ष की आयु में उनको पिताजी की बीमारी में माँ के साथ-साथ सेवा करने का अवसर मिला। पिताजी लगभग डेढ़ वर्ष बीमारी के कारण चारपाई पर रहे। उस समय गाँव में बीमार की परिचर्या के कोई साधन नहीं थे। मल-मूत्र उठाने से पंखा झलने तक के सेवा-कार्य में उन्होंने माँ का साथ दिया। पिताजी के देहावसान के उपरांत उनकी अस्थियों को गंगा में विसर्जित करने का गुरुतर कार्य माँ ने उन्हें सौंपा। यहीं से उन्होंने भारतीय संस्कृति के अच्छे पक्षों को पहचानने और कठमुल्लापन त्यागने की गहरी सूझ-बूझ अनुभव के आधार पर प्राप्त की। वैचारिक खुलापन, सत्य का आग्रह और स्वालंबन उनके स्वभाव के ऐसे गुण बन गए, जिनके कारण उनके जीवन में सेवा और संघर्ष की अनेक दिशाएँ खुलती चली गईं। गाँव किरथरा में अल्पायु में ही माँ के साथ कृषि का भार सम्हाला और शिक्षा-प्राप्ति के लिए साधन जुटाने के लिए भी सभी संभव प्रयत्न किए। मैट्रिक परीक्षा का परिणाम आने से पूर्व ही वे आगे की कॉलेज शिक्षा के लिए धन जुटाने का उपाय सोचते रहे और एक विज्ञापन के आधार पर राजस्थान के नवलगढ़ में एक मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गए। वहाँ वे कुछ महीनों तक रहे और फिर जुलाई से नया सत्र आरंभ होने पर वे अपने गाँव लौट आए। कमाए हुए रुपयों के आधार पर उन्हें आगरा कॉलेज में प्रवेश मिल गया। अब उनके कंधों पर शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ गाँव की खेती की ज़िम्मेदारी भी थी। युवा श्रीराम शर्मा ने इन दोनों कार्यों को पूर्ण कर्तव्य-भाव से पूरा किया और बी. ए. में अच्छे अंकों में उत्तीर्ण होकर एल.एल. बी. एवं एम. ए. (अर्थशास्त्र) में भर्ती हो गए। वे एक अच्छा वकील बनकर ईमानदारी से ज़नता की सेवा करना चाहते थे, किन्तु भाग्य उन्हें उस दिशा में ले गया, जिसमें संघर्ष ही संघर्ष था। वस्तुतः यही उनके अंतश्चेतन की अभीष्ट कर्म-दिशा भी थी।

अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी का साप्ताहिक पत्र *प्रताप* दैनिक होनेवाला था। सन् 1920 ई. का समय, प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हुआ था। अंग्रेज़ों के वचन-भंग के कारण स्वाधीनता की लड़ाई नया रूप ले रही थी। ब्रिटिश सरकार *प्रताप* और उसके संपादक-प्रकाशक को अपना भयंकर शत्रु समझती थी। दैनिक संस्करण के रूप में *प्रताप* भारतीयों में स्वतंत्रता-आंदोलन को तीव्र करने में आग में घी का काम करेगा, यह मानकर तत्कालीन नौकरशाही दमन के सभी रास्ते अपनाने को तैयार थी। अस्वस्थता-वश विद्यार्थी जी स्वास्थ्य लाभ हेतु हरिद्वार चले गए थे और (स्वाधीनता-सेनानी के रूप में बाद में बहुप्रसिद्ध) पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल *प्रताप* का संपादन-भार सँभाल रहे थे। विद्यार्थी जी के आग्रह पर उन्होंने यह कार्य स्वीकार तो कर लिया था, किन्तु वे स्वयं भी एम. ए., एल. एल. बी, की पढ़ाई करना चाहते थे। अतः उनके प्रस्ताव पर विद्यार्थी जी ने पंडित श्रीराम शर्मा को कानपुर बुलाकर *प्रताप* के संपादन का कार्य-भार सौंपा। इस प्रकार एक संकट-पूर्ण गंभीर उत्तरदायित्व को स्वीकार करके पंडित जी ने एम. ए., एल. एल. बी. की पढ़ाई छोड़ दी। यहीं से सन् 1920 में उनके बचपन और किशोरावस्था तक के साहस, पराक्रम, श्रम एवं बुद्धि-वैभव का नया दौर साहित्यिक जीवन के साथ आरम्भ हुआ।

पंडित श्रीराम शर्मा *प्रताप* का संपादन करते हुए पत्रकारिता के जिस रास्ते पर चले, वह एक स्वतंत्र-चेता निर्भीक पत्रकार के सम्यक् विवेक तथा लेखन-शक्ति का प्रतिभा-पूर्ण प्रदर्शन था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तक ने उनके संपादन-कार्य की भूमि-भूरि प्रशंसा की। दैनिक *प्रताप* की इतनी माँग बढ़ी कि अल्पकाल में ही (सन् 1921) में उसकी 1400 प्रतियाँ छपने लगीं, जो उस समय की परिस्थितियों में एक हिन्दी दैनिक के लिए आश्चर्य का ही विषय था। अंग्रेज़ों को *प्रताप* किसी-न-किसी रूप में बंद कराना था, अतः रायबरेली के एक ताल्लुक़ेदार से मानहानि का मुकद्मा चलवा दिया। यद्यपि महामना पंडित मदनमोहन मालवीय एवं मोतीलाल नेहरू ने *प्रताप* की ओर से साक्ष्य दिया, किन्तु विद्यार्थी जी को सज़ा हो गई और विवशताओं में *प्रताप* का दैनिक संस्करण बंद करना पड़ा। पंडित श्रीराम शर्मा उस संकट की घड़ी में विद्यार्थी जी का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। किन्तु विद्यार्थी जी ने उनको काशी से प्रकाशित दैनिक *आज* में नियुक्त करा दिया। भाग्य उन्हें दूसरे रास्ते पर ले जाना चाहता था। सात दिन के भीतर उन्हें प्रताप हाईस्कूल टिहरी (गढ़वाल) में नवीं-दसवीं कक्षाओं में अंग्रेज़ी, भूगोल और इतिहास पढ़ाने का नियुक्ति-पत्र मिल गया; अतः वे *आज* में नहीं गए। टिहरी के 'प्रताप हाई स्कूल' में वे चार वर्ष अध्यापक और फिर प्रधानाध्यापक रहे; किन्तु

लेखन-कर्म में शिथिलता नहीं आने दी। वहाँ रहकर उन्होंने गढ़वाली लोक-गीतों का एक बृहत् संग्रह तैयार किया। सामाजिक क्षेत्र में कार्य करते हुए टिहरी आर्य समाज की स्थापना में सहयोग दिया तथा उसके प्रधान का दायित्व भी सँभाला। स्वाभिमानी और संवेदनशील पंडित जी अपने एक साथी अध्यापक को षड्यंत्र का 'शिकार होने से बचाने के लिए रियासत के दंडाधिकारी के न्यायालय में उसकी जमानत के लिए गए और इससे मिस्ट्रिट के साथ उनका संघर्ष इतना बढ़ा कि अपने पद से त्याग-पत्र देकर वे मात्र एक ट्यूशन पर निर्भर हो गए। इस कार्य के दौरान उनका घुड़सवारी का अभ्यास बढ़ता गया और बाग़वानी का शौक़ पूरा करने का भी पर्याप्त अवसर मिला। टिहरी के बाद वे कुछ समय हरिद्वार रहे। इस बीच भी उनकी लेखनी बराबर चलती रही और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित राजनीतिक संदर्भों पर उनके अनके लेख हिन्दी पत्रों में प्रकाशित हुए। पहाड़ी-प्रवास के दौरान पंडित जी ने निजी एवं सामान्य जन-जीवन की रक्षा के लिए बंदूक़ को अपना साथी बनाया। यह टिहरी-प्रवास का ही परिणाम था कि वे अचूक निशानेवाले शिकारी बन गए। शुद्ध शाकाहारी एवं अहिंसावादी व्यक्ति की 'शिकारी' के रूप में ख्याति किसी को भी आश्चर्य में डाल सकती है या अविश्वास की गंध पैदा कर सकती है। वस्तुतः वे उन जंगली जानवरों—यथा, बाघ, भेड़िया आदि—का शिकार करते थे, जो गायों या दूध देनेवाले अन्य अहिंसक पशुओं को मार डालते थे या आवादी पर आक्रमण करते थे। उनकी बंदूक़ ख़ासतौर से जन-जीवन की रक्षा के लिए थी, जैसाकि उस समय के सुप्रसिद्ध दैनिक *सैनिक* के संस्थापक-संपादक एवं क्रांतिकारी नेता पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है :

"*प्रताप* के बाद श्रीराम जी अध्यापक होकर टेहरी (गढ़वाल) चले गए। वहाँ वे अचूक निशानेवाले शिकारी के रूप में प्रकट हुए। उनकी लेखनी और बंदूक़ दोनों ही शेर, भालू, जंगली सूअर जैसे ख़ूँख्वार जानवरों के साथ-साथ बहुत-से मनुष्य रूपी ख़ूँख्वार अत्याचारियों को अधमरा कर देती थीं।" (*हिन्दी अनुशीलन,* पृ. 10)

सन् 1932 में पंडित श्रीराम शर्मा हरदोई ज़िला की कटियारी रियासत में मैनेजर बनकर आ गए थे। वहाँ उन्होंने अपनी बौद्धिक क्षमता, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक जानकारी तथा सामाजिक दूरदृष्टि का पूरा परिचय दिया। आज़ादी से पूर्व भारत में छोटी-बड़ी जितनी रियासतें थीं, सभी सामंती व्यवस्थाओं का शिकार थीं, जिसके फलस्वरूप जन-जीवन अनेक प्रकार की विपदाओं का शिकार रहता था। पंडित जी ने कटियारी रियासत के मैनेजर के रूप में अपनी शक्तियों का

प्रयोग करते हुए अनेक सुधार किए। उन्होंने वहाँ बेगार-प्रथा पर रोक लगाई, रिश्वतख़ोरी पर अंकुश कसने के लिए अनेक उपाय किए, किसानों की दशा सुधारने के लिए अनेक नई सुविधाएँ प्रारंभ कराईं। उनके इन सुधारों से जिन लोगों के स्वार्थों पर चोट पड़ी, वे उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचते रहे। अंत में पंडित जी ने कटियारी के मैनेजर का पद सन् 1939 ई. में त्याग दिया। सुधारों की दिशा में किए गए उनके कार्यों के विरोधी राजा उदयप्रताप सिंह की डुमराँववाली रानी का 'संकटा ब्राह्मण' नाम का एक नौकर था, जो रानी का बहुत विश्वासपात्र था। उसने पंडित जी की हत्या के लिए कई षड्यंत्र रचे, किन्तु सफल नहीं हो सका। आगरा लौट आने के पश्चात् उन्हें अपनी हत्या के उन षड्यंत्रों का पता चला था। (*संस्मरण-सीकर*, पृष्ठ 104)

मैंने जैसाकि पहले कहा, टिहरी और कटियारी की नौकरियों के समय भी पंडित जी नियमित रूप से लेख लिखते थे और उस समय की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में छपाते थे। *योगी* (पटना) तथा *सैनिक* (आगरा) के प्रबंधादि में भी उन्होंने पर्याप्त योग दिया। 1938 ई. में ही रामानन्द चट्टोपाध्याय की प्रेरणा से उन्होंने *विशाल भारत* मासिक का संपादन-कार्य स्वीकार कर लिया था, जिसके लिए संपादन-कार्यालय बल्कावस्ती आगरा में रखा था तथा प्रकाशन-स्थान कलकत्ता वे कभी-कभी जाते थे। यह कार्य उन्होंने अवैतनिक रूप में स्वीकार किया था। सन् 1952 तक वे *विशाल भारत* के संपादक रहे। तब कुछ समय के लिए मोहन सिंह सैंगर एवं कवि अज्ञेय उनके सह-संपादक थे एवं इन पंक्तियों का लेखक 1948 से सहायक संपादक के रूप में अवैतनिक कार्य करने लगा था। पंडितजी के संपादकीय बहुत लंबे एवं सभी बिन्दुओं पर सार्थक टिप्पणियों से सम्पन्न होते थे। कभी-कभी वे अपने संपादकीय इस लेखक को बोल कर भी लिखाते थे। *विशाल भारत* की फ़ाइलों में बंद उनके संपादकीय लेखों की पृष्ठ संख्या 1500-1600 से कम नहीं होगी। इन पृष्ठों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, कृषिपरक तथा साहित्यिक समस्याओं एवं उनके विश्लेषण-विवेचन की बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित है। इस संदर्भ में हम उनकी पत्रकारिता पर विचार करते समय आगे अधिक प्रकाश डालेंगे।

दैनिक *प्रताप* का संपादन करते हुए पंडित श्रीराम शर्मा देश-सेवा की जिस राह पर चल पड़े थे, वह राह बहुत लंबी थी। चाहे वे टिहरी रहे हों चाहे कटियारी, उनकी मंज़िल उसी राह पर थी। *विशाल भारत* का संपादन करते हुए वे उस राह पर इतना आगे बढ़ आए थे कि पीछे लौटना उन्हें किसी भी रूप में स्वीकार नहीं था। जीविका का कृषि के अलावा कोई साधन शेष न रहने पर भी वे निरंतर तत्कालीन स्वाधीनता-आंदोलन में मन-वचन-कर्म से अपने स्वार्थों की आहुतियाँ

देते रहे। देश के तत्कालीन सभी बड़े नेता पंडितजी के त्याग, श्रम, विवेक एवं आदर्श आचरण के प्रशंसक बन गए थे। *विशाल भारत* का संपादन करते हुए वे महात्मा गाँधी के आश्रम में प्रति वर्ष कुछ समय के लिए जाने लगे थे और वहाँ जो भी सेवा-कार्य उन्हें सौंपा जाता था, उसको पूरी निष्ठा से करते थे। प्रभुदयाल विद्यार्थी ने *सेवाग्राम* पुस्तक में उनके संबंध में लिखा है :

"अभी चंद दिन पहले *विशाल भारत* के संपादक पंडित श्रीराम शर्मा जी यहाँ (सेवाग्राम) आए थे। हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों में उनका अपना स्थान है। हिन्दी में शिकार-साहित्य के प्रथम लेखक वे ही हैं। उन्हें भी सवेरे पाँच बजे पाख़ाने की सफ़ाई का काम दिया जाता था। कभी-कभी तो पानी भरने का काम भी उन्हें करना पड़ता था।** यहाँ से चलते समय उन्होंने कहा– 'कई सालों से मेरा स्वास्थ्य खराब था, लेकिन यहाँ शारीरिक श्रम करने से मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो गया।"

विद्यार्थी जी आगे लिखते हैं, "महात्मा जी ने एक दिन शर्मा जी का परिचय देते हुए कहा था–'पंडित श्रीराम शर्मा हमारे बीच में आ गए हैं। हिन्दी के वे अच्छे लेखक हैं। दीनबंधु ऐण्ड्रूज के कहने से वे *विशाल भारत* की अवैतनिक सेवा कर रहे हैं।XX वे हमारे बीच यहाँ एक माह रहेंगे। मेरी इदच्छा है कि आप लोग शर्मा जी से ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठा सकें। XX हमलोग यह देखकर दंग रह गए थे कि शर्मा जी जितनी तेज़ क़लम चलाना जानते हैं, उतना ही तेज़ शारीरिक श्रम भी करना जानते हैं।XX शर्मा जी आश्रम में एक मास तक रहे, पर ऐसा किसी दिन भी मालूम नहीं हुआ कि वे हमारे अपने आदमी नहीं हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि वे यहाँ के वायुमंडल में अच्छी तरह घुलमिल गए थे।" (*सेवाग्राम,* पृष्ठ 58, 59)

पंडित श्रीराम शर्मा के राजनीतिक जीवन का संघर्ष सन् 1942 ई. के महात्मा गाँधी द्वारा संचालित असहयोग आंदोलन के समय में तीव्रतम हो उठा। वे 9 अगस्त सन् 1942 ई. के काँग्रेस के बंबई-अधिवेशन में पारित 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के उपरांत मध्यभारत और उत्तर प्रदेश के जन-आंदोलन के संचालक बनाए गए। बहुत चतुराई और सूझ-बूझ से इस क्षेत्र में उन्होंने आंदोलन का नेतृत्व किया। 'आगरा षड्यंत्र केस' में वे 7 दिसंबर 1942 को तेरह अन्य व्यक्तियों के साथ गिरफ़्तार कर लिए गए। उनकी बड़ी पुत्री कमला, पुत्र रमेश तथा बड़े भाई आदि को भी जेल में डाल दिया गया। रमेश (डॉ. रमेश कुमार शर्मा) को तीन मास तक भयंकर यातनाएँ दी गईं, ताकि वह षड्यंत्र के तथ्य बता दें, परंतु उन्होंने सभी यातनाएँ सहीं और अंग्रेज़ों के हाथ कोई सुराग़ नहीं लगा। पंडित जी साढ़े

तीन वर्ष जेल में रहे और इस बीच उनके दो पुत्रों का स्वर्गवास हो गया। तीसरा पुत्र उनके जेल से बाहर आने के बाद चल बसा। इस प्रकार ब्रजेश, राकेश और दिनेश—तीन पुत्रों की बलि भी उसी स्वाधीनता-यज्ञ में चढ़ गई। उनके ये तीनों पुत्र रमेश (डॉ. रमेश कुमार शर्मा) से छोटे थे।

पंडित श्रीराम शर्मा को 'आगरा षड्यंत्र' का मुख्य अपराधी घोषित किया गया था। अतः सर्वत्र यह चर्चा थी कि उन्हें फाँसी हो जाएगी। हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री बांचू थे, जो बाद में भारतीय उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बने। डॉ. कैलाश नाथ काटजू ने पंडित जी के पक्ष में वकालत की। पंडित मदन मोहन मालवीय साक्षी बने। सब लोगों को अपार हर्ष हुआ, जब निर्णय पंडित जी के पक्ष में आया और दिसंबर 1945 ई. में पंडित जी छोड़ दिए गए।

गिरफ़्तार होने से पूर्व पंडित जी ने स्वाधीनता के लिए चल रहे आंदोलन का किस दक्षता से संचालन किया था, इसके अनेक संस्मरण *विशाल भारत* के पन्नों में सुरक्षित हैं तथा उसी समय के इने-गिने सभी समाचार-पत्र उसकी गवाही देते हैं। एक संस्मरण के कुछ अंश—उन्हीं के शब्दों में—गिरफ़्तारी से पूर्व :

"कांस्टेबिल ने गंभीरता-पूर्वक उत्तर दिया—'आज बहुत बड़ी दबिश दी गई है, तलाशी होगी और गिरफ़्तारियाँ होंगी। मुझे हुक्म नहीं है कि किसी को जीने से नीचे उतरने दूँ।'

"सँभलकर मैंने कहा—'अच्छी बात है, तो हम वापस तो अपने घर जा सकते हैं! उसमें क्या हर्ज है?'

"कुछ सोचकर कांस्टेबिल ने कहा—'हाँ ऐसा कर सकते हो।'

"बस फिर क्या था। हम लोग बड़ी सावधानी से पीछे लौटे और पास के एक कमरे की ओर नज़र डाली, तो उसमें एक महिला आटा गूँथ रही थी। दीपक टिमटिमा रहा था। कमरे के आगे दरवाजे पर एक दुबला-पतला आदमी खड़ा था। भीतर कमरे में घुसकर मैंने कहा—'देखिए मेरा नाम है श्रीराम शर्मा। पुलिस ने इस भवन को घेर लिया है। मैं बीमार हूँ, नहीं तो आगे की दीवार पर चढ़कर पेड़ पर होकर जा सकता था, पर एक मौक़ा है, अगर आप मेरी मदद करें और वह यह कि मुझे आप साड़ी दे दें और मैं आटा गूँथने लगूँ और आप इस तरह बैठ जाएँ कि मेरा पूरा शरीर दिखाई न पड़े। एक ओर से मेरे शरीर को ढँकते हुए यह महिला बैठ जाएँ और आप दरवाज़े पर यों ही खड़े रहें, किवाड़ खुले रहें, ताकि पुलिस को कोई शक न हो।'XX जीवन में पहली बार साड़ी पहनी थी। यों लहँगा तो एक बार सरदार भगतसिंह को पहनाया था।" (*संघर्ष और समीक्षा*. पृ. 30)

यों पुलिस को दिया गया चक़मा और पंडित जी वस्त्र बदलकर फिर बच निकले। अनेक बार उनकी पुलिस से नोंक-झोंक हुई, नए-नए करिश्मे हुए और वे बचकर आंदोलन का संचालन करते रहे। स्वाधीनता-संग्राम में उनकी सूझ-बूझ, साहस और निर्भीकता की ऐसी घटनाएँ उस समय के अनेक नेताओं को कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करती थीं।

जेल से छूटने के बाद पंडित श्रीराम शर्मा सेवाग्राम चले गए और स्वाधीनता-पर्व तक एवं उसके पश्चात् भी उनकी सेवा के प्रमुख क्षेत्र राजनीति, साहित्य-सृजन तथा पत्रकारिता ही रहे। खेती-बाड़ी से उनका बचपन से लगाव था, जिससे उनका नाता आजीवन बना रहा।

जब उत्तर प्रदेश में प्रथम स्वतंत्र सरकार पंडित गोविन्द बल्लभ पंत के मुख्यमंत्रित्व में बनी, तब पंडित श्रीराम शर्मा के सामने उसमें सम्मिलित होने का प्रस्ताव आया, जिसे उन्होंने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि यह मेरी सेवा का क्षेत्र नहीं...मैं स्वाधीनता-संग्राम में अपनी भागीदारी का कोई प्रतिफल नहीं ले सकता।

महात्मा गाँधी भारत का विभाजन करके अंग्रेज़ों द्वारा दी जानेवाली आज़ादी के पक्ष में नहीं थे। पंडित श्रीराम शर्मा इस विषय में उनके कट्टर समर्थक थे। किन्तु, वह नहीं हुआ। काँग्रेस ने विभाजन स्वीकार कर लिया। पंडित जी इस घटना से बहुत क्षुब्ध हुए और बहुत समय तक दुःखी रहे। हिन्दू-मुस्लिम-दंगों में उन्होंने शांति-स्थापना के लिए कई बार अपने जीवन को, ख़ासतौर से आगरा में, संकट में डाला था। सन् 1957 ई. के आम-चुनावों के समय वे काँग्रेस की कई नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने से नहीं चूके। उनका मत था कि भारत की उन्नति न पूँजीवादी व्यवस्था से संभव है, न साम्यवादी व्यवस्था से। इतिहास ने जो परिस्थितियाँ आज़ादी के साथ विरासत में हमें सौंपी हैं, उनमें विकास का एक ही मार्ग है गाँधीवाद। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि हमारी जनता और शासन में जब तक नैतिकता और नागरिकता नहीं आती, तब तक हमारी आज़ादी का सुफल हमें नहीं मिलेगा। यदि अनैतिक हथकंडों से सत्ता हथियाने की होड़ बढ़ती गई तो देश में भ्रष्टाचार और अराजकता का माहौल बनेगा। यह सब सोच-समझकर ही पंडित जी ने ग्रामोत्थान, जन-सेवा आदि के कई कार्यक्रम चलाए। उनकी लेखनी निरन्तर राजनीतिक बुराइयों पर संपादकीय लेखों एवं भाषणों के द्वारा प्रहार करती रही। जो लोग सत्ता-लोलुप थे और स्वाधीनता-संग्राम के समय जो कभी जेल भी नहीं गए थे, वे कुर्सियों की ओर बढ़ते गए और उनसे चिपके रहने के लिए पंडित जी ने कभी अपना मार्ग नहीं बदला।

पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, पंडित गोविन्द वल्लभ पंत, बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा कवितरत्न, पद्मसिंह शर्मा, बाबू गुलाबराय, हरिभाऊ उपाध्याय, विनयमोहन शर्मा, झावरमल्ल शर्मा, मास्टर आदित्येन्द्र, जगनप्रसाद रावत, कैलाशनाथ काटजू, मदनमोहन मालवीय आदि उस समय के अनेक प्रमुख नेता, साहित्यकार, समाज-सेवी आदि सदैव पंडित श्रीराम शर्मा की जन-सेवा के प्रशंसक रहे। दलितों, किसानों, महिलाओं तथा अन्य उपेक्षित वर्गों को वे आजीवन अपनी सेवा का लक्ष्य बनाते रहे। जीवन के अंतिम क्षण तक, आँखों की रोशनी चली जाने पर भी, वे साहित्य और समाज की सेवा में संलग्न रहे। अस्पताल की शैय्या से भी वे बोलकर लेख आदि लिखाते थे और जो भी मिलने आता था उसे वे देश-सेवा के आदर्श सिखाते थे।

पंडित जी के समय आज़ादी की कमज़ोरियों का लाभ उठाकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के यमुना-चंबल क्षेत्र में डाकुओं के अनेक दल बन गए थे। जनता तो इन ग्रोहों से अत्यधिक त्रस्त थी ही, सरकारों की भी नींद हराम हो रही थी। पंडित जी ने अपने लिए सेवा करने का यह क्षेत्र अधिक आवश्यक समझा था। वे जीवन के अंतिम दिनों तक दस्यु-समस्या के समाधान में लगे रहे। उन्होंने आचार्य विनोबा भावे, सुशीला आदि का इस कार्य में सहयोग लिया और चाहा कि किसी प्रकार डाकुओं में ऐसी सद्चेतना जगाई जाए कि वे दुष्ट-कर्म त्याग कर आत्म-समर्पण कर दें। उन्होंने डाकुओं में, अपने प्रभाव का पूरा उपयोग करते हुए, नैतिकता जगाने का जो प्रयास किया, वह क्षेत्रीय जन-इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। उन्होंने अपनी लेखनी और भाषणों तथा जन-संपर्क से आसामाजिक तत्त्वों पर जो प्रभाव डाला उसी का परिणाम था कि चंबल-घाटी में दो बार उस समय के ख़ूँख्वार डाकुओं ने आत्म-समर्पण किया। प्रथम दस्यु-समर्पण के समय लेखक भी आचार्य विनोबा भावे के साथ था और उसके सर्वोदय के गीत इस समर्पण-यात्रा में निरंतर गाए जाते रहे तथा बाद में उनका पुस्तकाकार प्रकाशन आगरा से हुआ। द्वितीय दस्यु-समर्पण में तो पंडित जी के कनिष्ठ पुत्र उदयन शर्मा की भी पर्याप्त सक्रिय भूमिका थी।

निष्कर्षतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पंडित श्रीराम शर्मा एक ऐसे नक्षत्र थे, जो जन-जीवन की भयंकर काली निशाओं में विभिन्न दिशाओं से प्रकाश फैलाकर अपनी आँखों की रोशनी तक अपने समय को समर्पित कर गए।

3

साहित्य-सर्जना

प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारतीय स्वाधीनता-संग्राम निराशा के अंधकार में प्रवेश कर रहा था। इस अंधकार को चीरकर नया प्रकाश लाने के लिए जो लोग सिर पर क़फ़न बाँधकर निकल पड़े थे, उनमें गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम अग्रगण्य है। पंडित श्रीराम शर्मा ने, जैसाकि पहले कहा जा चुका है, उनके आदेश पर पढ़ना छोड़कर सन् 1920 ई. में दैनिक *प्रताप* का संपादन-कार्य स्वीकार किया था। इस नए कार्य के साथ उनकी जो साहित्य-साधना आरंभ हुई, उसका प्रमुख लक्ष्य भारतीय स्वतंत्रता के यज्ञ में अपनी प्रतिभा की अनेकमुखी आहुतियाँ देना था। इस लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते हुए उन्होंने जीवन-पर्यन्त राष्ट्रीय और सांस्कृतिक साहित्य की सर्जना की। पहाड़ी क्षेत्र टेहरी-गढ़वाल में राजकीय सेवा में रहते हुए भी उन्होंने जनता की समस्याओं को समझा और उनके समाधान के लिए वे एक शिकार साहित्यकार के रूप में पाठकों के सामने आए। *प्रताप* की सेवा के समय का उनका क्रांतिकारी स्वभाव जनहित के लिए आदमख़ोर और गाय-बैल भक्षक बघेरों, शेरों तथा सूअरों के शिकार का कारण बन गया। अपने प्राण हथेली पर रखकर उन्होंने पहाड़ी जन-जीवन को जंगली जानवरों के भय से मुक्त करने के लिए अनेक अद्भुत शौर्यपूर्ण कार्य किए। इन्हीं कार्यों के फलस्वरूप उनकी निम्नांकित पुस्तकें हिन्दी-जगत् को उपलब्ध हुईं—

1. *शिकार* (1932 ई.)
2. *बोलती प्रतिमा* (1937 ई.)
3. *प्राणों का सौदा* (1939 ई.)

इन ग्रंथों ने पंडित श्रीराम शर्मा को पर्याप्त ख्याति दिलाई। वे *विशाल भारत* मासिक के संपादक बने और फिर जीवन-पर्यन्त राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक उत्थान के लिए अपनी सशक्त लेखनी से माँ सरस्वती का भंडार भरते रहे। *जंगल के जीव* (1949), *संघर्ष और समीक्षा* (1959), *वे जीते कैसे हैं* (1965) तथा

संस्मरण-सीकर एवं *संस्मरण और आखेट* जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाश में आए। इनके अतिरिक्त साहित्येतर विषयों में साहित्य-रचना की भी उन्होंने नींव डाली। *हमारी गायें* (1941), *पपीता* (1941) तथा *हमारे पक्षी* पुस्तकें इस क्षेत्र में उनकी महत्त्वपूर्ण देन हैं। उनकी कुछ पुस्तकों की पांडुलिपियाँ सन् 1942 की क्रांति में भाग लेने के कारण घर में पड़े छापों के समय पुलिस ने फाड़-फाड़कर फेंक दी थीं। स्वतंत्र रूप से ही *विशाल भारत, सुधा, सरस्वती, प्रभा, गुलदस्ता, आर्यमित्र* आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियों एवं लेखों का प्रकाशन संभव हुआ, जो अब शोध का विषय है। सभी जानते हैं कि गंभीर महत्त्वपूर्ण शाश्वत साहित्य का प्रकाशन स्वाधीन भारत में दिनों-दिन असंभव होता जा रहा है, ऐसी स्थिति में अगर पंडित जी की अनेक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं से बाहर आकर पुस्तक-रूप ग्रहण नहीं कर सकीं, तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं है।

पंडित जी की शिकार-संबंधी कुछ कहानियाँ तो पुस्तकाकार प्रकाशित हो गई थीं, किन्तु उनकी कई सामाजिक कहानियाँ केवल पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों तक सीमित रह गईं। ऐसी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ निम्नांकित हैं–

1. लाहौर की यात्रा, *सुधा,* 16 नवंबर 1933 ई.
2. दो क़ैदी, *विशाल भारत,* जनवरी 1947 ई.
3. दूर देश है जाना, *सरस्वती,* जनवरी 1947 ई.
4. भ्रातृ-युद्ध, *सरस्वती,* मई 1947
5. उत्सर्ग, *सरस्वती,* सितंबर 1948 ई.
6. भूखा रोजदार, *सरस्वती,* जनवरी 1945 ई.
7. हत्या, *सरस्वती,* मई 1946 ई.

इन कहानियों का परिवेश जीवन की विभिन्न समस्याओं को अपने भीतर समेटे हुए है। जीवन-संग्राम की भीषणता का हृदय हिला देनेवाला चित्रण इन कहानियों में मिलता है।

पंडितजी ने यात्रा-संबंधी कई लेख भी लिखे थे, जिनमें से निम्नांकित लेख *विशाल भारत* एवं अन्य पत्रिकाओं में उपलब्ध हैं–

(1) आगरा से सेवाग्राम।
(2) सेवाग्राम से पुणे
(3) बंबई से आगरा।
(4) आगरा से दिल्ली।
(5) आगरा से शिलांग।

विषय-विविधता के लिए हुए उनके जो लेख *विशाल भारत* में प्रकाशित हुए, उनकी संख्या शताधिक है। कुछ प्रमुख लेख हैं—

(1) बंदरों की समस्या, मार्च 1937 ई.

(2) चारे के दुर्भिक्ष का एक उपाय, सितंबर 1940 ई.

(3) गाय, गाँव और गाँधी, अक्टूबर 1947 ई.

(4) हल्दी की काश्त, सितंबर 1957 ई.

(5) बबूल बनाम गेहूँ, जनवरी 1958 ई.

(6) गाय कैसे बचे, अप्रैल 1963 ई.

(7) बारह वर्षीय युद्ध, नवंबर 1963 ई.

(8) खेतीबारी और पशुपालन, जून 1964 ई.

इस प्रकार के लेखों में पंडित श्रीराम शर्मा ने जीवन और लेखन का सीधा संबंध जोड़ा है। उनकी लेखनी भाषा से लेकर भाव-धारा और चिन्तन के स्तर पर जीवन की समस्याओं से सीधा संघर्ष करती है। भारतीय संस्कृति, ग्रामीण जीवन एवं राजनीतिक विचारधाराओं के अछूते आयाम उनके ऐसे सभी लेखों में खुलते जाते हैं। कुछ अन्य लेखों के शीर्षक देखिए—

1. अबई तो बेटी बाप की, मई 1936 ई.
2. यू. पी. का नया आराजी क़ानून, जून 1940 ई.
3. जमीन की कटन : एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न, अगस्त 1940 ई.
4. पेड़ लगाइए, जनवरी 1941 ई.
5. पेड़ लगाइए, कहाँ, क्यों और कैसे, मार्च 1948 ई.
6. काँग्रेस का भूमि-सुधार प्रस्ताव, फ़रवरी 1959 ई.।

भारतीय किसान और ग्रामीण जीवन को प्रेमचंद कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत कर गए थे और पंडित श्रीराम शर्मा ने उसे विश्लेषण—विवेचन एवं चिन्तन के माध्यम से उद्घाटित किया। उस समय निम्न एवं मध्यम वर्गों की जो समस्याएँ थीं, उनको प्रस्तुत करते हुए पंडित जी चिन्तन के पटल पर विश्वसनीय समाधानों की ओर भी बढ़े। इस क्षेत्र में वे अपने समय के अकेले लेखक थे। स्वाधीनता का प्रकाश जिन क्षेत्रों में आवश्यक था, किन्तु सरकारें उसे राजधानियों तक रोके हुए थीं, उसके विरुद्ध पंडित जी की लेखनी निरंतर संघर्ष करती रही तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने काँग्रेस की नीतियों तक को अपनी स्पष्टवादिता का निशाना बनाने से नहीं छोड़ा। उन्होंने विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए अपने लेखों में जो सुझाव दिए, वे आज भी प्रासंगिक हैं। इसी पृष्ठभूमि

में लिखे गए उनके कतिपय अन्य लेख निम्नांकित हैं–

1. कोयल, आकाशवाणी, लखनऊ (2 मई, 1950) तथा *विशाल भारत*, जुलाई 1957 ई.।
2. वन-जीवन का संरक्षण, फ़रवरी 1958 ई.
3. ब्रज की संस्कृति की विशेषताएँ *विशाल भारत*, अगस्त, 1958 ई.
4. ब्रज की भाषा, *विशाल भारत*, जून 1958 ई.
5. ब्रज का खान-पान, *विशाल भारत*, मार्च, 1959 ई.
6. ब्रज के जीवन में परिवर्तन : शिक्षा, आकाशवाणी दिल्ली से 8 दिसंबर 1958 को प्रसारित।
7. किसान के मित्र और शत्रु : पशु और पक्षी, *विशाल भारत*, फ़रवरी, 1559 ई.
8. पशुओं के साथ अच्छा बर्ताव, *विशाल भारत*, अक्टूबर 1963 ई.

पंडित श्रीराम शर्मा ने समाज के सभी वर्गों को ध्यान में रखकर साहित्य-रचना की थी। बच्चों और किशोरों के लिए उन्होंने लोक-कथाओं एवं पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर अनेक कहानियाँ लिखीं तथा अपनी कल्पना से भी बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर कथा-सृजन किया। उनकी ये कहानियाँ *विशाल भारत* में अधिक प्रकाशित हुई हैं। यद्यपि ये कहानियाँ शताधिक है, इसलिए पूर्ण सूची देना संभव नहीं है। तथापि, कुछ प्रमुख बाल-कथाओं का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। यथा–

1. चूहा और मेंढक, *विशाल भारत*, सितंबर 1949 ई.
2. राजा के दो सींग, *विशाल भारत*, मार्च 1957 ई.
3. समझौता, *विशाल भारत*, अप्रैल 1957 ई
4. दोनों एक-से, *विशाल भारत*, अप्रैल 1957 ई.
5. पूजा और दक्षिणा, *विशाल भारत*, जून 1957 ई.
6. संध्या, *विशाल भारत*, अगस्त 1957 ई.
7. चंपो के चाचा, *विशाल भारत*, अक्टूबर 1957 ई.
8. गीता पढ़ रही है, *विशाल भारत*, दिसंबर 1957 ई.
9. भोंगाँव-भूषण, *विशाल भारत*, मार्च 1958 ई.
10. अहंकार, *विशाल भारत*, अक्टूबर 1960 ई.
11. तीन धूर्त, *विशाल भारत*, मार्च 1961 ई.
12. जीता की हँसी, *विशाल भारत*, नवंबर 1961 ई.
13. बीरबल की परीक्षा, *विशाल भारत*, अप्रैल 1962 ई.
14. गीदड़ों की बोली, *विशाल भारत*, नवंबर 1962 ई.

शर्मा जी की इस प्रकार की कहानियाँ बाल-साहित्य में अपना विशेष स्थान

बनाती हैं। जैसाकि हम पीछे लिख आए हैं, पंडितजी सनातनी ब्राह्मण होते हुए भी विचारों में आर्यसमाज के अधिक निकट थे। इसलिए उन्होंने नई पीढ़ी को कठमुल्लेपन से बचाने के लिए ऐसी बाल-कथाएँ भी लिखीं, जो समाज पर सीधा व्यंग-प्रहार करती हैं। यथा–

1. नेता, *विशाल भारत,* जून 1957 ई.
2. जीवन से मोह *विशाल भारत,* दिसंबर 1960 ई.
3. कुल मिसरानी, , *विशाल भारत,* नवंबर 1958 ई.
4. नेतागिरी का पट्टा, *विशाल भारत,* फ़रवरी, 1957 ई.
5. व्यंग-बाण, *विशाल भारत,* नवंबर 1963 ई.
6. आधुनिक नेतागिरी, *विशाल भारत,* सितंबर 1963 ई.
7. बड़ा आदमी कौन, *विशाल भारत,* 1960 ई.

बच्चों के लिए हिन्दी में सत्य-कथा लिखने की नींव भी पंडित श्रीराम शर्मा ने ही डाली थी। *विशाल भारत* में इस प्रकार की कई कहानियाँ उन्होंने छापी थीं। उनकी कतिपय प्रमुख सत्यकथाएँ, जो *विशाल भारत* में छपी थीं, निम्नांकित हैं–

1. चार असल खानदानी, *विशाल भारत,* फ़रवरी 1060 ई.
2. मोह, *विशाल भारत,* अप्रैल 1960 ई.
3. भोंगामी उपासक, *विशाल भारत* फ़रवरी 1962 ई.
4. चिम्पा, *विशाल भारत,* मई 1963 ई.
5. जनाना टिकट, *विशाल भारत,* जून 1963 ई.
6. गाँव की मर्यादा, *विशाल भारत,* जुलाई 1963 ई.
7. उपाधि की व्याधि, *विशाल भारत,* जुलाई 1964 ई.

वस्तुतः पंडित श्रीराम शर्मा का साहित्य बहुआयामी है। हिन्दी गद्य के निर्माताओं में उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिकार-साहित्य के प्रमुख लेखक और पत्रकार के रूप में उनकी अत्यधिक ख्याति रही है, किन्तु जीवन के साहित्येतर विज्ञानों, कलाओं और भारतीय दर्शन एवं संस्कृति विषयक जो लेख उन्होंने लिखे हैं, वे भी उनके यश को चिरस्थायी बनाने के लिए पर्याप्त हैं। जैसाकि उनकी रचनावली से सिद्ध है, वे सदैव मानव-जीवन के कल्याण के लिए अपनी समस्त रचना-शक्ति का उपयोग करते रहे। यही कारण है कि बालकों और किशोरों के लिए भी उन्होंने नियमित रूप से शिक्षाप्रद कहानियाँ लिखीं।

पंडित श्रीराम शर्मा ने कई पुस्तकों का अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद भी किया था। जिम कार्वेट, कर्नल स्लीमैन आदि की अंग्रेज़ी भाषा में लिखित तथा ख़्वाजा हसन निजामी की उर्दू में लिखी पुस्तक आदि के हिन्दी अनुवाद मौलिक कृतियों के समान ही लोकप्रिय हो गए थे।

4

शिकार-साहित्य : तीन धाराएँ

पंडित श्रीराम शर्मा के मौलिक साहित्य की कई धाराएँ हैं। इन धाराओं को हम निम्नांकित शीर्षक दे सकते हैं–

1. शिकार-साहित्य।
2. संस्मरण और रेखाचित्र।
3. सामाजिक कहानियाँ।
4. कृषि-संबंधी निबंध।
5. समसामयिक समस्याओं पर चिन्तनपरक लेख।
6. प्रौढ़ एवं किशोर-साहित्य
7. यात्रा-वृत्तांत एवं डायरी।

इन धाराओं से सबसे बड़ी धारा उनका शिकार-साहित्य है। यद्यपि उनकी शिकार-संबंधी रचनाओं के मूल में 'स्मृति' काम करती है, किन्तु उसमें डायरी, ललित निबंध एवं रेखाचित्र के कलांश भी मिले हुए हैं तथा आंतरिक सूत्र बनकर कहानी का शिल्प भी सहायक हुआ है। यही कारण है कि उनकी शिकार-संबंधी रचनाओं को विधा की दृष्टि से कोई आलोचक 'संस्मरण' मानता है, कोई आलोचक कुछ रचनाओं को रेखाचित्र घोषित करता है, और कुछ रचनाओं को कहानियाँ भी मान लिया जाता है। जिन ग्रन्थों को 'शिकार-साहित्य' में सम्मिलित किया जाता है, उन ग्रंथों की विधा-गत ये सभी विशेषताएँ तो महत्त्वपूर्ण हैं ही; किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उन रचनाओं की विषय-वस्तु और चिन्तन-दृष्टि। जिस प्रकार भक्ति-विषयक रचना को भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत रखा जाता है या कार्ल मार्क्स के चिन्तन पर आधारित रचना को साम्यवादी अथवा प्रगतिवादी साहित्य की सीमा में समेटा जाता है, उसी प्रकार पंडित श्रीराम शर्मा की शिकार-विषयक रचनाओं को 'शिकार-साहित्य' की धारा में सम्मिलित किया जाता है। इस धारा के प्रमुख ग्रंथ हैं–*शिकार, प्राणों का सौदा* और *जंगल के जीव।*

शिकार

हिन्दी में शिकार-साहित्यधारा की प्रथम पुस्तक पंडित श्रीराम शर्मा की कृति *शिकार* 1932 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उनकी ये 13 रचनाएँ संकलित की गई हैं– स्मृति, कुफ़्र टूटा, भिड़ंत, मौत के मुँह में, काने का अंत, ख़ून घटवारा, चील-झपट्टा, खलीफ़ा के हाथ, श्मशान के सींग, पैने छुरे, शिकार-सप्ताह, बंडा और वाद-विवाद।

प्रथम रचना 'स्मृति' में एक भयंकर कोबरा सर्प के शिकार का वर्णन है। शर्मा जी इस रचना का आरंभ जिस प्रकार करते हैं, उससे उनकी लेखन-शैली की नवीनता, चिन्तन-परक विषय-दृष्टि तथा कथा की दिशाएँ सहज रूप से स्पष्ट होने लगती हैं। उनके शब्द हैं :

"सायंकाल को जब मैं अकेला जंगल से लौटता हूँ, तो डूबते सूर्य की किरणें पूर्व की ओर संकेत करती हुईं मानो कहती हैं–'शैशव काल में हमारी दृष्टि अपने वर्तमान स्थान की ओर थी। इधर आने को हम उतावली हो रही थीं; पर मध्याह्न के मद के उपरांत अनुभव हुआ और अब तो हम बिलख रही हैं कि बाल्यकाल के उस माधुर्य की पुनः प्राप्ति असंभव है। ए रायफ़लधारी! शीघ्र ही आयु ढलने पर, भी हमारी भाँति बाल्यकाल के लिए विह्वल होकर आँसू बहाएगा। अच्छा हो तू अभी से चेते।' मैंने इस चेतावनी को बहुत-कुछ सार्थक पाया है।" (*शिकार*, पृ. 1)

इन पंक्तियों से ऐसा लगता है कि पंडित जी कोई ललित निबंध लिखने जा रहे हैं। आगे का दूसरा पैरा भी इस तथ्य की साक्षी देता है, जब वे यह लिखते हैं :

"बरसात में उगे पौधे को आनेवाले शीत और ग्रीष्म का कुछ पता नहीं होता। उद्‌गम के समीप के सरिताजल को क्या मालूम कि आगे चलकर संसार की ग़िलाज़त उसमें आकर मिलेगी और स्वच्छता तथा गंदगी में कितना संघर्ष होगा। पिल्लों को यह समझ थोड़े ही होती है कि बाल्यावस्था के समाप्त होते ही उनकी स्नेहमयी माँ रोटी के एक टुकड़े के लिए उन्हें काटने दौड़ेगी; न मृगशावक को ही इस बात का ज्ञान होता है कि उसके तनिक पीछे रह जाने पर रँभानेवाली उसकी माँ, कुछ बड़े होने पर, उसको अपने पास की घास तक न चरने देगी।"

पंडित जी की यह बौद्धिक भूमिका वस्तुतः पाठक को उस अतीत की स्मृतियों में ले जाने के लिए है, जिसके भीतर उनके बचपन के अनेक रंग-रूप छिपे हुए हैं। ग्यारह वर्ष की उम्र में एक नए खोदे गए जल-हीन कुएँ में जाकर केवल एक डंडे से भयंकर कोबरा सर्प का वध करने की स्मृति इस भूमिका के कई

पट खोलती है। पिता का देहावसान, बड़े भाई का भय, विधवा माँ की ममता, कर्तव्य-निष्ठा आदि अनेक बातें बालक श्रीराम शर्मा को उस भयंकर परिस्थिति तक ले पहुँचीं, जो 'स्मृति' शीर्षक रचना में चित्रित की गई है। स्कूल आते-जाते रास्ते में पड़नेवाले एक कुएँ में अन्य सहपाठियों के साथ वे भी उस भयंकर कोबरा साँप पर पत्थर फेंका करते थे, जो उसमें कहीं से आकर जा गिरा था। वह भयंकर फुँफकार भरता था और पत्थर फेंकनेवाले बच्चे उस दृश्य का आनंद लेते थे। एक दिन बड़े भाई के आदेश से श्रीराम शर्मा अपने छोटे भाई को साथ लेकर गाँव से कुछ मील दूर मक्खनपुर के डाकख़ाने में डालने तीन चिट्ठियाँ लेकर निकले। रास्ते में उन्हें वही पुरानी शरारत सूझी और कुएँ के पास से निकलते समय उस सर्प पर पत्थर फेंकने लगे। तीनों चिट्ठियाँ कुएँ में गिर गईं। बड़े भाई के भय और कर्तव्य-निष्ठा ने उन्हें वह साहस दिखाने की प्रेरणा दी, जिसका इस 'स्मृति' रचना में वर्णन है। अल्पायु में सर्प के अत्यंत रोमांचक शिकार की श्रीराम शर्मा की यह प्रथम रचना है। वे लगभग 36 फ़ीट गहरे कुएँ में कैसे उतरे, किस विवेक और हिम्मत से भयंकर कोबरा का एक डंडे से वध किया—यह सब ऐसी घटना का भोगा हुआ यथार्थ चित्रण है, जिसके समकक्ष कोई रचना विश्वसाहित्य में शायद ही मिले। सर्प को मारकर तीनों चिट्ठियाँ उठाईं और बहुत कठिनाई से फिर कुएँ से कैसे बाहर आए, यह सब इस रचना का अत्यंत मार्मिक अंश है। भाषा की असाधारण सादगी और जीती-जागती उपमाएँ, लोकोक्तियाँ तथा व्यंग्य समस्त चित्रण को अत्यंत प्रभावशाली बना देते हैं। ग्रामीण जीवन की सहजता एवं प्रकृति से अभेद्य मानव-संबंध इस रचना की सार्थकता बनकर अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित हुए हैं।

'कुफ़्र टूटा' रचना में उस भयंकर 'बाघ' के शिकार का वर्णन है, जो टिहरी के जंगल में बहुत समय से आतंक फैला रहा था। उसने अनेक गायों को अपना भोजन बनाया था। उसे मारने के लिए टिहरी की सरकार ने अनेक प्रयत्न किए और जिन लोगों को यह उत्तरदायित्व सौंपा वे अपनी जान बचाने के सिवा कुछ न कर सके। पंडित जी गाय के परम भक्त थे। अतः वह बाघ उनको प्रत्यक्षतः अपना ही भक्षक शत्रु लगता था। उन्होंने उसका शिकार करने का निश्चय किया और अंततोगत्वा इस कार्य में सफल हुए। 'बाघ' जंगल में कब और कहाँ मिले तथा कैसे मारा जाए, केवल यही जानना पर्याप्त नहीं था। पंडित जी 'बाघ' के स्वभाव आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। अतः उन्होंने कई बार जंगल में रात-रात भर मचान पर रहकर बिताए। एक दिन वह नज़र आया। वह गाय को मारकर खा रहा था। पंडित जी के ही शब्दों में—

"चंद्रमा का प्रकाश चारों ओर छा गया। लाश दिखाई पड़ती थी। गाय की चारों टाँगें आकाश की ओर उठी हुई थीं। उसका पिछला भाग बाघ के पेट में जा चुका था।XX दो बजे। हम उसी आसन पर डटे थे। शीत बढ़ा और तीन बजे सामने से एक पत्थर गिरा।XX हम सतर्क हो गए। आध घंटे उपरांत हमसे एक गज़ की दूरी पर कुछ पत्थर सरके।XX धीरे-धीरे जो मैंने बाहर को देखा, तो विशाल दृश्य था। लाश पर दो पंजे रखे हुए, पेट में मुँह गाड़-गाड़ कर और मुँह भरे हुए, चारों ओर सिंहावलोकन करते हुए, सतर्कता की मूर्ति, लम्बी पूँछ हिलाते हुए, रुक-रुककर वह अपने स्वाभाविक काम में लगा था।XX इतना साहसी जीव, जो एक थप्पड़ में गाय को मार सकता है, इतनी चालाकी और सतर्कता से अपना भोजन करे! उसका ऐसा प्राकृतिक स्वभाव है।XX" (पृ. 22)

फिर कैसे हुआ इस शक्तिशाली चालाक गो-भक्षक बाघ का वध, यह भी पंडित जी के ही शब्दों में पढ़िए—

"ठीक पौने चार बजे (रात) दो फ़ायर किए। लाश की ओर से कंपोत्पादक दहाड़ हुई। गोली खाकर बाघ तड़पा। धमाका हुआ, फिर कुछ क्षणों के लिए हम तीनों बुद्धि-हीन हो गए। हाँफते हुए बाघ ने एक चपेट में हमारी क़िलाबंदी तोड़ दी। करौंदा और मोटे लक्कड़ का हमारा आश्रय भाप-सा बनकर न जाने कहाँ उड़ गया। बाघ के पंजे का एक हाथ और पड़ता तो मैं स्वतंत्रता के उस पुजारी पर आक्रमण करने का फल पा जाता। अपशकुन तो पहले ही हो चुका था, पर मैं तो मरने-मारने पर उतारू था। बंदूक़ की नाल उसके पेट से सटाकर गोली दाग दी। कमर टूट गई। पट्ट से बाघ गिरा और गुर्राता हुआ नीचे खिचड़ने लगा। जितना ही वह ऊपर आने को ज़ोर लगाता था, उतना ही नीचे जा रहा था। मेरुदंड-हीन जीव या संस्था ऊपर नहीं चढ़ सकती। ख़ुशी के मारे हम आपे से बाहर थे।XX वहाँ से उठे और भरी हुई बंदूक़ लिए हुए सावधानी से घिसटन की ओर बढ़ चले। आगे जाकर देखा तो बाघ मरा पड़ा है। पत्थर फेंककर यह निश्चय किया कि बाघ मर गया है। मैं आगे बढ़ा और देखा कि गौ-भक्षक मरा पड़ा है।" (पृ. 23)

अंतिम वाक्य ध्यान देने योग्य है, जिसमें उनके शिकार-साहित्य का समस्त दर्शन समाया हुआ है। पंडित जी को गाँव, किसान और गाय से बेहद प्यार और लगाव था। कृषि और गाय को वे गाँव की रीढ़ मानते थे। जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं, पंडितजी पक्के अहिंसावादी-गाँधीवादी थे, किन्तु उनकी अहिंसा और गाँधीवाद का उनका चिन्तन अपना था। वे गाँव, गाय और किसान पर अत्याचार करनेवाले को घोर अत्याचारी और हिंसक मानते थे तथा अत्याचार एवं हिंसा के

अंत के लिए वे शक्ति का प्रयोग आवश्यक बतलाते थे। कायरता—अत्याचार सहते रहना—उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा अधर्म था। वे राम के परम भक्त थे, इसलिए मूर्ति-पूजा में विश्वास न करते हुए भी वे राम का हर हृदय में अवतरण चाहते थे। राम उनको इसीलिए विशेष प्रिय थे, क्योंकि उन्होंने राक्षसों के अत्याचार से पृथ्वी को मुक्त किया। अंग्रेज़ों के विरुद्ध देश की आज़ादी के लिए हिंसा का प्रयोग करते हुए वे अहिंसा-संबंधी अपने इस विशेष दृष्टिकोण के कारण ही नेताजी सुभाषचंद्र बोस के घोर समर्थक हो गए थे।

टिहरी में अध्यापन करते समय पंडित श्रीराम शर्मा बाघ के शिकार के लिए काफी प्रसिद्ध हो गए थे। वहाँ के किसान बाघों से परेशान थे। जंगल में चरने जितनी गायें जाती थीं, उन्हीं में से एक-दो को बाघ मारकर खा जाते थे। 'भिड़ंत' शीर्षक रचना में एक ऐसे बाघ का शिकार चित्रित है, जिसने एक किसान की दो गायों का एक ही दिन में वध कर दिया था। वह बूढ़ा किसान बहुत दुःखी होकर पंडितजी की शरण में आया था :

"देखा तो बाहर पश्मीने की चादर ओढ़े मेरे शिकारी मित्र पं. लक्ष्मीदत्त थपलियाल खड़े हैं और उनकी बग़ल में एक हाड़ का कंकाल बूढ़ा खड़ा है। उसकी मुखाकृति उसकी अंतर्वेदना की द्योतक थी। कष्ट, विपत्ति और समय के उलटफेर ने उसकी गति तूफ़ान में फँसे जहाज़ की-सी कर दी थी।" (पृ. 24)

लक्ष्मीदत्त और पंडित जी उस किसान की रक्षा की दृष्टि से बाघ का शिकार करने निकले। दो गायों का वध हुआ था, इसलिए उन्होंने अनुमान लगाया कि बाघ दो भी हो सकते हैं। अतः वे दोनों अलग-अलग उन दिशाओं में चले गए, जहाँ गायें मरी पड़ी थीं। पंडित जी बाघ के स्वभाव आदि के विषय में बहुत कुछ जानते थे :

"बाघ जंगल का कूटनीतिज्ञ चाणक्य है। छोटी-सी हिलती पत्ती से, आसन बदलने से और कहते हैं कि पलक की आवाज़ तक से अपने शत्रु को समझ लेता है और फिर लाश पर नहीं आता।XXX छिप-छिपकर, रुक-रुककर और चारों ओर देख-देखकर वह एक-एक गज़ बढ़ता है।" (पृ. 26)

अतः बहुत सावधानी से वे पहाड़ पर चढ़ते हुए अपने गंतव्य की ओर बढ़े। फिर जो कुछ हुआ उसका अत्यंत रोमांचक चित्रण शर्मा जी ने किया है। दोनों का आमना-सामना होता है :

"एक मिनट तक हम दोनों डटे रहे। बाघ गुर्रा रहा था। उसकी आँखों से ज्वाला-सी निकल रही थी। मैंने न फ़ायर किया और न उसने आक्रमण। यह एक मिनट युग के समान था। अंत में बाघ एकदम मुड़कर भागा। ज्योंही वह

मुड़ा, मैंने समझा कि बस, मेरे ऊपर आया। बंदूक़ दाग़ ही तो दी।' जंगल गूँज गया। गोली बाघ के पेट में लगी। मैंने बाघ को गिरते देखा।'' (पृ. 29)

बाघ तो अधमरा हो गया, किन्तु शर्मा जी भी लुढ़ककर खड्ड में जा गिरे, पर बचे कैसे? वे लिखते हैं :

''मौत के अनेक बहाने होते हैं और जीवन-रक्षा के अनेक सहारे। यदि जीवन होता है, तो मनुष्य पहाड़ की चोटी से गिर कर बच जाता है और मरने के लिए सीढ़ियों से गिरना ही काफ़ी है। मुझे बचना था। भगवान् को यही मंज़ूर था कि मैं बचा रहूँ।XX हाथ-पैर पीटे और उस पेड़ से आकर टकराया।'' (पृ. 30)

इस प्रकार बाघ के शिकार का अनुभव-सिद्ध वर्णन पंडित जी के आध्यात्मिक विश्वास की गवाही देता है। वे प्रसंगानुसार कहीं भाषा के लालित्य में डूब जाते हैं और कहीं अपने यथार्थ को दार्शनिक भाषा के आवरण में सजा देते हैं।

'मौत के मुँह में' संस्मरण में भी एक बाघ के शिकार का ही वर्णन है। वृत्तांत जीवन के यथार्थ से जुड़कर पहाड़ी लोगों की जिस सांस्कृतिक मनोदशा तक पाठक को पहुँचाता है और जिसके सभी छोर लेखक पंडित श्रीराम शर्मा की गहरी संवेदना से जिस प्रकार आवद्ध मिलते हैं, उसका अनुमान इस उद्धरण से सहज में लगाया जा सकता है :

''बूढ़ा एक छोटी-सी भग्नावशेष कुटिया में रहता है। कुटिया के सामने एक छोटा-सा बाड़ा है। उसी में उसके पशु बँधते हैं। दो छोटे-छोटे बैल, दो गायें—जो बाघ-द्वारा मारी गईं—और एक गाय का बच्चा, हल और थोड़ा-सा बीज—बस यही उसकी पूँजी है। बर्तनों में तवा, करछी, पतीली, थाली, तीन गिलास और दो लोटे हैं। कपड़ों में—बुढ़िया जो कुछ पहने है—एक जीर्ण-शीर्ण कुर्ता, एक पैबंददार पहाड़ी धोती है और नाक में सौभाग्य का चिह्न पीतल की नथ है। बूढ़ा एक लंगोट पहने और हाथ में हुक़्क़ा लिए—जिसको उसके दादा ने देहरादून से मोल लिया था—हमारी ख़ातिर में लगा था। कभी नमक लाता था और कभी दही।XX''

आतिथ्य की इस स्थिति को आगे दिखाते हुए पंडित जी लिखते हैं :

''यदि आतिथ्य का तात्पर्य प्रेम, सहृदयता और जो कुछ अपने पास रूखा-सूखा हो, उसका खिलाना है, तो बूढ़े का आतिथ्य उस षड्रस भोजन से सौ गुना अच्छा था, जो कलह-कूप-अट्टालिकाओं में बड़ी शान के साथ दिया जाता है। सत्कार-भाव से बूढ़े की आँखें चमक रही थीं, और बाघ के मरने पर उसे जो प्रसन्नता हुई थी वह कदाचित कैसर के पतन से लायड जार्ज को भी न हुई। बूढ़े के सामने यदि प्रसिद्ध शिकारी सर सैम्युएल भी आ जाते, तो वह

उनका भी इतना क़ायल न होता, जितना कि वह हमारा था।" (पृ. 34)

इस शिकार में पंडित जी के साथ शिकारी लक्ष्मीदत्त घायल हो गए थे। पंडितजी लिखते हैं :

"मैंने परब्रह्म को कोटिशः धन्यवाद दिया और अपने भाग्य को सराहा कि उस दिन मेरे साथी की जान बच गई। मुझे अपना ख़्याल न था। यों मरने-जीने को तो–

"एक जाता है तो आता है जहाँ में दूसरा।

"उसकी महफ़िल का कभी ख़ाली मकाँ होता नहीं?" (पृ. 41)

पंडित जी का अनुभव, चिन्तन और विश्वास की गहरी नींव पर खड़ा है। भाषा निरंतर उसका साथ देती है। वे उर्दू-फ़ारसी, अँग्रेज़ी आदि कई भाषाओं के विद्वान् थे। अपने लेखों, भाषणों आदि में उर्दू की शेरों का यथासंदर्भ प्रयोग करके वे अपने भावों की बड़ी सटीक व्यंजना करते थे, जैसाकि पूर्वोक्त उद्धरण से स्पष्ट है। 'काने की खोज में' संस्मरण में इसका दूसरा उदाहरण देखिए :

"थोड़ी दूर चलकर लक्ष्मीदत्त जीने कहा–'मिर्ज़ाजी! आपको तो कोई चिन्ता भी नहीं, फिर सूखते क्यों जाते हैं?

"मिर्ज़ा बोले–

"कबाबे सीख हैं हम करवटें हरसू बदलते हैं।

जो जल उठता है यह पहलू तो वह पहलू बदलते हैं।" (पृ. 45)

'काना' एक बाघ था, जो गाँव की कई स्त्रियों को खा चुका था। पंडित जी लिखते हैं :

"XXगाँववालों को पूरा विश्वास हो गया कि काना बाघ-योनि में कोई विकट प्रेत है। मैंने उन्हें बहुत धैर्य बँधाया, पर जिस पर बीतती है, वही जानता है। इसी गाँव से एक मास के भीतर चार स्त्रियाँ मारी जा चुकी हैं। हिन्दुस्तानी किसान मौत और विपत्ति को अटूट साहस से सहते हैं। मौत, रोग और अत्याचार उनके लिए साधारण-सी बात हो गई है। आए दिन की रस्मों में हैं जो अदा करनी पड़ती हैं।" (पृ. 47)

उस दिन इस काने बाघ को खोज पाना संभव न हुआ। गाँववाले बहुत दुःखी थे, ख़ासतौर से उन बच्चों का करुण-क्रंदन असह्य था, जिनकी माताएँ उसकी शिकार हुई थीं। पंडित जी लिखते हैं :

"सायंकाल को हमलोग अपना-सा मुँह लेकर घर आ गए। शिकारी को सर्वदा सफलता नहीं मिलती, बाघ और भालू रास्ते में बैठे नहीं मिलते और मिलने पर भी हाथ नहीं लगते, और यदि कहीं शिकारी की मन की-सी हो जाए, तो

फिर क्या कहना!

"तुपकदार और बाज की, मनचीती जो होय।
कबिरा या संसार में, साबित बचे न कोय।।" (पृ. 49)

'काने का अंत' संस्मरण में उस बाघ के बध का वर्णन है। पंडित जी बाघ आदि के शिकार का वर्णन इस ढंग से करते हैं कि उसमें भारतीय समाज़ का वह वर्ग जो दीनता-हीनता का शिकार है, अत्यंत हृदय-द्रावक भाषा में बोलने लगता है। यही कारण है कि अहिंसावादी पंडित जी का जीवन-दर्शन अहिंसा की सीमित नैतिकता के क्षेत्र में कई बार हस्तक्षेप करता है। वे एक गाल पर चाँटा खाकर दूसरा गाल भी चाँटा देनेवाले को नहीं सौंप देते। बाघ का वध वे उचित नहीं मानते, तब जबकि वह जंगल तक सीमित रहे; लेकिन जब वह आम इंसान की ज़िन्दगी को हिंसा से भरने लगे, तब उसका वध अनुचित नहीं है। 'काना बाघ' गाँव के लोगों के जीवन के साथ जो खिलवाड़ कर रहा था, उसके कारण कितने ही घर तबाह हो गए थे। एक विरक्ता बुढ़िया को भी वह खा गया था। उस बुढ़िया को साक्षात् कृष्ण का अवतार समझनेवाले एक युवक ने 'काना बाघ' का किस साहस, चातुर्य और विवेक से वध किया, यह इस संस्मरण में व्यंजित करते हुए पंडित जी उस समाज की विसंगतियों का तन-मन झकझोरनेवाली भाषा में वर्णन करते हैं। बुढ़िया संन्यासिनी थी, जो गाना गाती हुई लोगों को जीने का सही रास्ता दिखाती थी, किन्तु अंधविश्वासी लोग उसको डाकिनी या चुड़ैल समझते थे। देश के कई भागों में अब भी इस प्रकार के अंधविश्वास पनप रहे हैं। इसीलिए पंडित जी ने इस संस्मरण में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर जम कर चोट की है। वे लिखते हैं :

"हाई स्कूल की पढ़ाई का पैमाना यूनिवर्सिटी अथवा बोर्ड का परीक्षा-फल है। लड़के का चरित्र और संसार-सागर को पार करने की शक्ति का मटियामेट हो जाए; विद्यार्थी चाहे शरीर से दिवालिया हो जाए, आँखें भीतर घुसकर कपोल सूखकर उसको खूँसट बना दें; पर परीक्षा में वह प्रथम और द्वितीय अवश्य रहे। डिग्री या डिप्लोमा एक प्रकार का टिकट या पासपोर्ट है, योग्यता का सूचक नहीं।" (पृ. 50)

शिकार पुस्तक के अन्य संस्मरणों में भी इसी प्रकार यथार्थ घटनाओं को विभिन्न प्रकार की सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि समस्याओं के चिन्तन का केन्द्र बनाया गया है और उनमें क़दम-क़दम पर पंडितजी की मौलिक विचार-धारा प्रवाहित मिलती है, जो उनके संवेदनशील हृदय की स्रोतस्विनी है। 'ख़ूनी फ़व्वारा' संस्मरण में एक भयंकर घड़ियाल के शिकार का वर्णन है। इस संस्मरण का आरंभ देखिए :

"शराबी का स्वर्ग शराब, साकी और सनम के साथ है और मेरा आनंद वेदांत, साहित्य और शिकार में है। जब दुनिया की कठोरता से, लोगों की धोखेबाज़ी और गृहचिन्ता से चित्त जलने लगता है, तो आबादी से दहशत आती है, जंगल का स्मरण हो आता है और पागल की भाँति उसी ओर को भाग जाने को जी चाहता है।" (पृ. 57)

आबादी और जंगल के जीवन का यह अंतर इस संस्मरण में तब उजागर हो उठता है, जब पंडित जी ख़ूनी घड़ियाल के विषय में अपने अनुभव प्रस्तुत करते हैं। वे आदमी और घड़ियाल की तुलना-सी करते हुए लिखते हैं :

"यदि वह अपने क़िले—पानी-से अपने भावी शत्रुओं की अथवा भोजन की तलाश में कोई ऊँच-नीच काम करे तो क्या हानि? कम-से-कम वह अपनी जाति का ख़याल रखता था। बुद्धि के पुतले, ब्रह्म के निकटतम प्राणी इस दो पैर के पशु की भाँति वह अपने काले कारनामों पर बाइबिल, कुरान और वेद की छाप तो नहीं लगाता था।" (पृ. 60)

जिस ख़ूनी मगर को गोली का ग्रास बनाया गया, वह सामान्य ग्रामीण जनता के लिए कितना ख़तरनाक था, यमुना के उस घाट पर उसका कितना आतंक छाया हुआ था, इसका अनुमान निम्नांकित उद्धरण से लगाया जा सकता है :

"'मगर' मरा पड़ा था। उसकी पूँछ छह-सात इंच पानी में थी। गोलियों से उसकी पीठ छलनी हो गई थी। वह बारह फ़ीट नौ इंच लंबा था। पेट फाड़कर देखा, तो उसमें चूड़ियाँ तथा कड़े निकले और हाल में खाई हुई स्त्री के शरीर के भाग। ये चीज़ें यमुना में फेंक दी गईं। स्मृति चिह्न में कड़े रख लिए। उस दिन से घाट का प्रयोग होने लगा।" (पृ. 65)

यह वही 'मगर' था, जिसने पंडितजी के सामने किसी अनजान नव दंपती में से स्त्री को यमुना पार करते समय निगल लिया था और उसके पति का असह्य रोदन न सह सकने के कारण वे उसके वध का निश्चय कर चुके थे।

संपूर्ण *शिकार* ग्रंथ पंडित श्रीराम शर्मा के ऐसे ही जीवंत संस्मरणों का अत्यंत रोचक संग्रह है, यद्यपि अपने पर्वतीय क्षेत्र में निवास के समय उन्होंने बाघों का शिकार अधिक किया है और उसके पीछे पहाड़ी जन-जीवन को बाघों के भय से मुक्त करना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है, किन्तु सर्प आदि के वध में भी उन्होंने अपने शिकार कौशल का रोमांचक प्रदर्शन किया है। उनका 'ख़लीफ़ा के हाथ' संस्मरण 'स्मृति' संस्मरण के समान ही अत्यंत रोचक है। इसमें 'नेवले और सर्प' की लड़ाई में सर्प का वध किया गया है। 'पैने छुरे' संस्मरण में एक भयंकर जंगली सूअर के वध की स्मृति का कलात्मक अंकन है, जिसमें पंडित जी स्वयं भी घायल

हुए हैं। 'शिकार-सप्ताह' में यमुना के कुछ 'मगरों' को मारने का चित्रण किया गया है। 'श्मशान के सींग' में एक काले हिरन के शिकार का वर्णन है, जो कहीं-कहीं कहानी का रूप ले लेता है। यथा :

"बड़े होकर जवानी में एक पूरे झुंड का स्वामी होकर उसने कैसे सुख भोगे होंगे। हाँ, अब वह अपनी वर्तमान बेबसी को ख़ूब समझता था। उस श्मशान में और हिरन नहीं आते थे। उसके लिए यह श्मशान भूमि ऋष्यमूक पर्वत के समान थी।XX दिन भर चौकन्ना रहकर मील-दो-मील की परिधि में खेतों में छिपकर चरा करता। शाम को अँधेरे में जाता। रात भर रहकर सुबह फिर चला जाता।XX हज़ारों मल्ल-युद्धों में उसने अपने प्रतिपक्षियों को हराया था। उसके सींगों के सौन्दर्य पर हिरनियाँ मोह जाती थीं।" (पृ. 95)

हिरन खेतों को तो नुक़सान पहुँचाते हैं, किन्तु हिंसक उस रूप में नहीं होते जिस रूप में बाघ, सर्प, मगर आदि होते हैं। अतः हिरन के या नीलगाय के वध पर पाप-पुण्य या हिंसा-अहिंसा के कई नैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रश्न उठते हैं। पंडित जी को भी अपने भीतर तथा बाहर समाज में उठनेवाले ऐसे सवालों का सामना करना पड़ा है, जिन पर इस ग्रंथ के अंतिम संस्मरण में नाटकीय संवाद-शैली में विचार किया गया है। हिरन का वध किया जाता है और सामने आ खड़े होते हैं वे सब प्रश्न। *शिकार* के सभी संस्मरणों में किसी-न-किसी रूप में ऐसे प्रश्न पंडित जी की अंतरात्मा को भी कहीं-न-कहीं झकझोरते हैं। अतः किसका शिकार करना है और किसका नहीं करना है, यह निर्णय वे अपनी अंतरात्मा पर छोड़ देते हैं। उन्हीं के शब्दों में—

"दो चार हिरनियाँ अपने शावकों को चाटती जाती थीं और संतरियों के होने पर भी वे अति सतर्क थीं। सूर्य कभी-बादल से निकल आता था और कभी छिप जाता था। धूप और छाया की लहरें हिरनी के उस सुखी कुटुंब पर होकर बह रही थीं। वे कितने सुखी थे! कितने स्वस्थ थे। शत्रुओं का उन्हें उस समय ज़रा भी भय न था।XX ऐसे सुखी कुटुंब पर कैसे गोली चलाता?"

प्राणों का सौदा

सन् 1939 ई. में प्रकाशित इस पुस्तक में शिकार-संबंधी तेरह लेखों का संग्रह किया गया है। पंडित जी लिखते हैं :

"इस संग्रह के दो लेख 'अपमानजनक मृत्यु' और 'रुद्रप्रयाग का आदमख़ोर' किसी पुस्तक के आधार पर नहीं हैं। शेष लेख 'चैडविक' की *हंटर्स एंड हंटेड*, 'मेजर फोरन' की *किल ऑर बी किल्ड*, 'लेफ़्टीनेंट कैसरले' की *इ्येलर्स इन दि*

जंगल, नोलैज की *दि टैरर्स ऑफ दि जंगल एंड इन दि ग्रिप ऑफ़ दि जंगल* पुस्तकों में वर्णित लेखों और *वाइल्ड वर्ल्ड* अंग्रेज़ी पत्रिका में छपे दो लेखों के आधार पर हैं।'' (*प्राणों का सौदा,* परिचय)

यहाँ यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि क्या इस पुस्तक के ग्यारह लेख मौलिक नहीं हैं? पंडित जी ने भूमिका में इस भ्रम का निवारण स्वयं कर दिया है। वे लिखते हैं :

शिकार आपबीती घटनाओं का चित्रण है और *प्राणों का सौदा* कलाविद् और मशहूर शिकारियों पर बीती घटनाओं अथवा दुर्घटनाओं का चित्रण है।''

अतः इस पुस्तक के सभी लेख पंडित जी को एक शिकारी के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि एक संवेदनशील ऐसे लेखक के रूप में साहित्य-जगत् के सामने लाते हैं, जो कहानी, ललित निबंध, रेखाचित्र एवं संस्मरण को मिलाकर एक नई विधा का निर्माण करता है। शिकारी-जीवन का संबंध प्रकृति से अधिक होता है। अतः इस पुस्तक में पंडित जी की संवेदना प्रकृति-चित्रण की सूक्ष्मतम गहराइयों तक पहुँचती है। वे वन्य-जीवन और मनुष्य के संघर्षों के अंग्रेज़ लेखकों के लेखों का अनुवाद करते समय भी एकदम नया रूप दे देते हैं। नाम, स्थान, दृश्य, घटनाएँ—सबमें एक नयापन आ जाता है। प्रकृति के बीच अटूट संवेदनशील मानव संबंध को वे शिकार साहित्य का आधार बनाते हैं। इसी संबंध के बीच मानव जाति का अस्तित्व सार्थकता पाता है।

प्राणों का सौदा पुस्तक का प्रथम लेख 'रुद्रप्रयाग का आदमख़ोर'[1], जो 1957 ई. में नए रूप में पुस्तककार प्रकाशित हुआ, एक बाघ के शिकार की कथा का अत्यंत रोमांचकारी चित्रण है। इस चित्रण में प्रकृति और मनुष्य का पारस्परिक संबंध तथा कठिन पहाड़ी जीवन की समस्याएँ—एक-दूसरे से इस प्रकार गुंफित हैं कि उनके ताने-बाने अलग करके किसी नैतिक या दार्शनिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। पंडित जी स्वयं ही मानव-जीवन की दीर्घ यात्रा के लिए अपने चिन्तन से नई पगडंडियाँ रचते हैं।

हिमालय की विषमताओं में, जिनके भीतर ही हम किसी सुखद सौन्दर्य की तलाश कर सकते हैं, पंडित जी अपने अनुभवों के आधार पर बहुत गहराई तक प्रवेश करते हैं और उन्हीं के बीच मानवीय संवेदनाओं की एक आकर्षक दुनिया रचते हैं। लेख का आरंभ रुद्रप्रयाग की स्थिति से होता है :

''किसी वृक्ष के तने में जैसे दो मुख्य शाखाएँ फूटती हैं, उसी भाँति रुद्रप्रयाग से दो मार्ग फटते हैं—एक तो मंदाकिनी की ओर से केदार को और दूसरा अलकनंदा के किनारे-किनारे बदरीनाथ को।XX रुद्रप्रयाग है तो हिमालय में; पर ग्रीष्मकाल

में, वहाँ हिमालय का कुछ भी आनंद नहीं आता। पहाड़ की गंजी चोटियाँ, संकीर्ण घाटी और फलस्वरूप असह्य गर्मी भट्टी-की-सी, अच्छे वन का अभाव!XX न जाने विधाता ने वहाँ की पर्वत-श्रेणियों और पहाड़ियों को फूहड़पन से बनाया है, या जानबूझकर किसी षड्यंत्र की रचना की है।" (पृ. 1)

'षड्यंत्र 'शब्द का प्रयोग करके वे प्रकृति के मध्य ठहरी असहाय ज़िन्दगी की समस्याओं की ओर पाठक को ले जाते हैं और उस बघेरे पर पाठक का ध्यान केन्द्रित करते हैं, जो 'आदमख़ोर' हो चुका है। वह न तो वहाँ के लोगों को चैन से सोने देता है, न जगने देता है। देखिए :

"एक दिन इस रुद्रप्रयाग के पास किसी गाँव का एक घसियारा लापता हो गया। लोगों ने ढूँढ़ा और बड़ी खोज के उपरांत एक झाड़ी में उसका विकृत कपाल, पैर, हाथ और हड्डी के कुछ टुकड़े मिले।XX मनुष्य-भक्षी बाघ का समाचार आस-पास अगले ही दिन फैल गया। घसियारे और चरवाहे जंगल में जाने से सहमे।" (पृ. 2)

यह एक दिन की घटना नहीं थी; प्रायः रोज़ कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई बाघ का शिकार हो जाता था :

"...रुद्रप्रयाग के निकट एक घसियारे को बाघ ने फिर दबोच लिया। अस्थि-पिंजर समेटकर उसकी दाहक्रिया की गई और अलकनंदा में चिता की आग को वहा दिया गया। पति-वियोग में स्त्री सिर धुन रही थी।XX" (पृ. 3)

वाघ के अत्याचारों का यह क्रम जारी रहा :

"बाघ के उत्पात से हाहाकार मच गया। अवोध बालकों का बिलखना, विधवाओं की चीत्कार और बन्धु-विछोह—जन्य क्रंदन हिमालय की ऊँची चोटियों और संकीर्ण घाटियों को पार करके देश भर में फैल गया। बंबई और कलकत्ता के समाचार-पत्रों में भी दुखियों की आवाज़ पहुँची।" (पृ. 4)

प्रजा की रक्षा का दायित्व शासन पर होता है, किन्तु आदमख़ोर बघेरे के उत्पातों की इन ख़बरों का क्या हुआ? ऐसी ही स्थितियों में पंडित जी की राजनीतिक और सामाजिक चेतना सहजता के साथ अभिव्यक्ति पाती है। यथा :

"राज-शासन रूपी अजगर आसानी से नहीं हिलता-डुलता। उसे तो भोजन चाहिए, भोजन करके वह सुषुप्तावस्था में पड़ा रहता है; पर यदि उसको हिलाया डुलाया जाए और लकड़ी की मार दी जाए या कुछ और हरकत की जाए, भला-बुरा कहा जाए, तो वह हिलता है। बाघ के उत्पात के कारण चारों ओर आंदोलन-सा उठ खड़ा हुआ।" (पृ. 6)

इस आदमख़ोर बघेरे को मारने का दायित्व जन-हित में पंडित श्रीराम शर्मा

लेते हैं। वे अपने इस कठिन कार्य में किस प्रकार सफल हुए, इसका अत्यंत रोमांचकारी वर्णन उन्होंने इस लेख में विस्तार से किया है। इस वर्णन में हिमालय की प्राकृतिक सुषमा के साथ-साथ उसके बीच रमी-वसी ज़िन्दगी का विभिन्न अनुभवों और कोणों से रोचक कथात्मक चित्रण चित्त-पटल पर अपनी विभिन्न रंग-रेखाओं में सदा के लिए अंकित हो जाता है।

प्राणों का सौदा का दूसरा लेख, जो वस्तुतः एक रोचक कहानी की शैली में लिखा गया है—'प्रेमोपहार' है। इस लेख में अफ्रीका की 'क्वैडो' और 'ओकवैंगो' नदियों के बीच फैले शुष्क प्रदेश की एक जंगली जाति के दो प्रेमियों की कथा एक सिंह के शिकार से संबंधित है। दो अंग्रेज़ शिकारी 'फ्रेड जैक्सन' और 'चैडविक'' इस प्रदेश में शिकार खेलने जाते हैं और वे एक जंगल-वासिनी नवयुवती 'सिकासी' तथा युवा 'काना' के अटूट निर्मल प्रेम के साक्षी बनते हैं। 'काना' उस युवती को प्रेमोपहार देने के लिए सिंह का शिकार करता है। पंडित श्रीराम शर्मा ने इस प्रसंग को अनेक नए रंग दिए हैं। सिकासी से 'काना' के अलावा एक अन्य बनवासी भी प्रेम करता है। वह युवती प्रस्ताव रखती है कि दोनों युवकों में से जो भी उस जंगल के अत्यंत, सुंदर, इंपाला हिरन की लाल और सफ़ेद रंगोंवाली ख़ाल लाकर उसे देगा, उसी से वह शादी करेगी। 'काना' सिकासी की इसी शर्त को पूरा करने के लिए अपनी जान की बाजी लगा देता है। उसकी गोली से घायल होने पर भी हिरन अपने झुंड के साथ दौड़ जाता है। किन्तु आगे जाकर जहाँ वह मरा मिलता है, वहाँ उस रूप में नहीं जिस रूप में काना उसे चाहता था :

''जिसकी ख़ाल के लिए उसने देवी-देवता मनाए, जिसकी प्राप्ति के निमित्त उसने इतनी तपस्या की, भूखा-प्यासा निर्जन वन में पड़ा रहा और जिसकी ख़ाल ले जाकर सिकासी को भेंट करता, वह विकृत और अधचखा पड़ा था। फटी ख़ाल, सो भी टुकड़े, किस काम के थे! अधखवे हिरन और उसकी लाश की खोज से मालूम हो गया कि काना के साथ किसी ने धूर्तता की है। उसके शिकार पर किसी ने डाका डाला है।'' (पृ. 28)

यह डाका डालनेवाला वही सिंह था, जिसका वध करके 'काना' ने 'सिकासी' के प्रेम को जीतने की साहस-पूर्ण चेष्टा की। सिकासी इंपाला हिरन की लाल-सफ़ेद ख़ाल चाहती थी। लेख का अंत दूसरे ही रूप में होता है :

''सिकासी से जब कहा गया कि कोई भी मूर्ख इंपाला की ख़ाल प्राप्त कर सकता है और पैसे वाला ग़ुलाम तक उसे ख़रीद सकता है, पर काना-जैसा वीर पति उसे नहीं मिल सकता, तब सिकासी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, वरन् अपने रसीले नयन नीचे कर लिए। काना का यह प्रेमोपहार अवश्य स्वीकृत हुआ होगा।

प्रमाण? सिकासी के दो गवाह नयन, काना के पक्ष में थे। काना उसकी आँखों में समा चुका था।" (पृ. 31)

प्राणों का सौदा के अन्य सभी लेख भी इस प्रकार की यथार्थ घटनाओं को कहानी का रोमांचक रूप देते हुए जीवन का, राग-रंग-भय प्रकृति और मानव-नियति के व्यापक पटल पर आकर्षक चित्रण करते हैं। ऐसा रचना-कर्म हिन्दी साहित्य में प्रथम बार प्रस्तुत हुआ है, जिसके लिए पंडित श्रीराम शर्मा सदा स्मरण किए जाते रहेंगे। वे विषय-वस्तु का संयोजन जिस रोचक कथात्मक प्रवाह में करते हैं, उसी के अनुकूल आलंकारिक भाषा और सहज शब्दावली भी अपनाते हैं। तीसरे लेख 'बदला' में एक मगर के शिकार का वर्णन है। किन्तु यह 'वध' भी अकारण नहीं :

"वह युवती हाल में ही विवाह-सूत्र में बँधकर मुतशिवी नामक व्यक्ति के यहाँ आई थी। अभी उसे अपने सुहाग-जीवन का कुछ विशेष अनुभव नहीं हुआ था। पेड़ का सहारा पाकर जिस प्रकार वल्लरी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती है, उसी प्रकार अपने नवीन सहारे मुतशिवी को पाकर उस युवती के नवीन जीवन में कोंपलें निकली थीं; पर मुतशिवी के घर की वह जगमगाती ज्योति मनहूस 'मगर' ने बुझा दी।" (पृ. 33)

मुतशिवी ने अपने प्राण संकट में डालकर किस प्रकार उस मगर का वध किया, यह समस्त प्रसंग अत्यंत रोमांचक और उत्तेजक हो उठा है। मानवीय संवेदना के सूत्र भावों की किन-किन स्थितियों से होकर गुज़रते हैं और प्रकृति उनमें कितना साथ देती है, यह *प्राणों का सौदा* के सभी लेखों में एक विशाल पटल पर अत्यंत जीवत रूप में देखा जा सकता है। मुतशिवी एक इंसान है और हर इंसान के सुख-दुःख, संवेग-संवेदनाएँ यत्किंचित अंतर के साथ समान होती हैं। जीवन के इस सत्य की साक्षी में मुतशिवी के आँसू 'बदले' की भावना का प्रमाण बनते हैं :

"उन आँसुओं से उसने अपनी स्त्री को अश्रु-अंजलि दी, पर विरह का ज्वालामुखी उसके हृदय में जलता ही रहा और वह उसके जीवन भर जाग्रत रहेगा। उसको केवल एक संतोष और अभिमान है कि उसने अपनी प्यारी के ख़ून का बदला ख़ून से लिया। वह बदला था या नहीं—यह कहना कठिन है। पर मुतशिवी को उस बदले से कुछ सांत्वना ज़रूर मिली और उसका स्नेह अपनी मृत पत्नी के प्रति और भी गाढ़ा हो गया।" (पृ. 38)

'अटल नियम' में शिकार का जो दृश्य सामने आता है, उसमें शिकारी मनुष्य केवल द्रष्टा है। संदर्भ पूर्वी अफ्रीका में 'सावो' के निकट जंगल में एक भैंसे और

काली केसरवाले सिंह के पारस्परिक युद्ध का है। भैंसा सिंह को मार देता है और घायल हो जाने के कारण अंततः वह भी मर जाता है। इस प्रसंग को पंडित श्रीराम शर्मा गहरी संवेदना और उत्तेजना की भाषा में एक आकर्षक रचना का रूप देते हैं। दोनों जंगली जीवों के स्वाभिमान का अंत यों होता है :

''सिंह निस्तब्ध पड़ा था। भैंसे की क्रोधाग्नि अभी शांत न थी। उसे आशंका थी कि कहीं वे तीखे छुरे और क्रूर दाँत फिर न उछल पड़ें। सिंह का कचूमर निकल गया था। पर भैंसे को अभी इसका पूरा विश्वास न था। इसीलिए उसने दो-तीन भयानक हुंें सींगों से मारीं, परंतु सिंह निस्तेज हो गया था। विजयी भैंसा संतुष्ट होकर पराजित और मृतक सिंह पर खड़ा था। उसकी टाँगें शराबी की टाँगों की तरह इधर-उधर डगमगा रही थीं, आँखें चमक रही थीं और विजयोत्सव का स्वाद उसे आ रहा था।XX टाँगें कुछ और डगमगाईं। उसकी जीवन-ज्योति बुझने ही वाली थी। कुछ दम-सा घुटा और उसकी आत्मा सिंह की आत्मा से मिलने चली गई। धम्म से भैंसे की लाश सिंह के शव पर पड़ी। विजेता और विजित दोनों तर-ऊपर पड़े थे।'' (पृ. 45)

पंडित जी ने *प्राणों का सौदा* में शिकार के ऐसे ही अनेक पक्षों को एक विशिष्ट रचना-शैली का विषय बनाया है और मानवेतर जीवों के रहन-सहन, स्वभाव प्रवृत्तियों आदि का अत्यंत रोचक विज्ञान साहित्य को दिया है। 'अपमानजनक मृत्यु' शीर्षक लेख में ग्रामीणों द्वारा एक शेर के वध की कथा है, जिसके माध्यम से वे शेरों के स्वभाव पर यों प्रकाश डालते हैं :

''जंगली शेर और बाघ तो आदमी की आहट से दूर हो जाते हैं—आदमी की गंध के पास होकर नहीं निकलते। उन्हें तनिक भी पता चले कि आदमी आ रहा है, तो हटकर दूर हो जाएँगे या छिप जाएँगे। चोट खाने या छेड़ख़ानी करने पर तो हज़ारों में हमला करेंगे और इसी बात के तो शेर हैं।'' (पृष्ठ 51)

'शैतानी समूह' लेख में जंगली जीवों के मनोविज्ञान को कुछ अधिक विस्तार से चित्रित किया गया है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' के नियम पर चल रही जंगली सृष्टि का एक दृश्य मध्यप्रदेश के जंगली जीवों की कहानी कहता है। इस दृश्य में कुत्ते हैं, गीदड़ हैं, हिरन हैं, शेर हैं और वे सब छोटे-बड़े जीव हैं, जो अधिक संघर्ष नहीं कर पाते। एक चित्र :

''शेर ने एक हिरन को पानी पीते धर दबोचा और अपना पेट भरकर तथा शेष अंश फिर के लिए छोड़कर वह घनी छाया में सुख की नींद सो गया। थोड़ी देर बार उसकी नींद विचित्र प्रकार की ध्वनि—हू-हू-हू-ही-ही-ही-से, जिसको उसने कभी सुना न था, भंग हो गई और आँख खोलकर जो देखा तो, 10-12 विचित्र

प्रकार के छोटे गीदड़ उसके भोजन को खा रहे हैं। वायु लाश की ओर से शेर की ओर चल रही थी, इसलिए गीदड़ों को शेर का कुछ पता न चला। संदेह दूर करने के लिए हरी पत्तियों में से उसने सिर उठाकर अच्छी तरह देखा और दंग रह गया। शेर का भोजन गीदड़ खावें और वह भी उससे छीनकर। इस अभियोग का दंड केवल एक था—मौत।" (पृ. 57)

इस प्रकार पाठक पंडित श्रीराम शर्मा के इन शिकार-संबंधी लेखों में प्रवेश कर कहानी का आनंद लेता हुआ मानव-जीवन के इर्द-गिर्द बसी उस दुनिया की विशिष्टताओं से परिचित होता है, जिन्हें भुलाकर हम शहरी जीवन की उस दौड़ में शामिल हैं, जिसको उस जीवन की जानकारी के लिए केवल अज़ायबघरों की कृत्रिमता पर निर्भर रहना पड़ता है। 'यमदूत से साक्षात्' में जंगली जीव शेर और मनुष्य के मनोविज्ञान को अत्यंत भीषण परिस्थिति में चित्रित किया गया है। यह एक स्थायी महत्त्व का विषय है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, पंडित जी के शिकार-लेखन की अपनी मौलिक शैली है। 'यमदूत से साक्षात्' में इस शैली को सहज में समझा जा सकता है। प्रथम पैराग्राफ़ में वे अन्य लेखों या संस्मरणों के समान ही चिन्तन-पूर्ण निबंध की शैली अपनाते हैं। यथा :

"राजनीतिक जीवन का तत्त्व है स्वातंत्र्य युद्ध में मोरचा लेना। मनुष्यत्व का सार है दुःखी और पीड़ितों की निष्काम सेवा करना और वीरता तथा साहस की कसौटी है औसान रखते हुए आतंकमयी परिस्थिति का मुक़ाबला करना। जो स्वतंत्रता की कोरी बातें करते हैं और लड़ाई से दूर भागते हैं, जो अपनी सेवा की डींग हाँकते हैं और मरने तथा विरोध करने से हिचकिचाते हैं, वे हैं कायर और ढोंगी-बेपेंदी के लोटे, तनिक-सी विरोध-लहर, कठिनाई और दचोके से ग़ायब हो जाते हैं।" (पृ. 64)

इस प्रकार वे एक भूमिका बनाते हुए शिकार की यथार्थ दुनिया में प्रवेश करते हैं और ऐसा लगने लगता है कि वे कोई संस्मरण लिख रहे हैं। किन्तु पाठक जब कुछ आगे बढ़ता है, तो जाने-अनजाने वह कहानी के उस लोक में खो जाता है, जो एक अनुभूत सत्य को कल्पना-जन्य अनुभव के निकट पहुँचाती प्रतीत होती है। 'यमदूत से साक्षात्' में शेर और शरतकुमार घोष का मुक़ाबला लेखन-कला के ऐसे ही मनोरम कपाट खोलता है। "शरतकुमार घोष का 'बँगला' एक बड़े खेत के बीचोंबीच था और खेत के चारों ओर जंगल था, जिससे लोग भयभीत थे।" (पृ. 65) इस बँगले में गर्मी के कारण किवाड़ खोल कर सोते घोष बाबू का मुक़ाबला अनामंत्रित मेहमान एक शेर से होता है और फिर जो चित्रण चलता है, वह उस शेर और घोष बाबू की मानसिक स्थितियों को अत्यंत रोचक कहानी

का रूप दे देता है। "कितनी देर तक वह सोए, सो तो कहना कठिन है, पर घबराहट और किसी भयंकर दुर्घटना की आशंका की भावना से चौंककर जाग गए। कमरे में कुछ दम घुटनेवाला वातावरण था। हवा गरम और दुर्गन्धमयी थी, मानों कोई दूसरा बड़ा जीव भी वहाँ हो।XX उनकी अर्धमूर्च्छित अवस्था अभी ज्यों-की-त्यों थी कि उन्हें ऐसा भान हुआ, मानों उन्होंने अपने पलंग के निकट गहरी और कर्ण-कटु साँस सुनी हो।" (पृ. 67)

घोष बाबू के पलंग पर मसहरी लगी थी, इसलिए शेर कुछ समय पलंग से कुछ दूर बैठा रहा और परिस्थिति को भाँपता रहा। अचानक घोष बाबू की खाँसी की 'ठुल्ल' ध्वनि ने शेर की शंका को भंग कर दिया। फिर जो कुछ हुआ, वह इस लेख का बहुत-ही रोचक प्रसंग है। निश्चय ही यह पंडित जी का स्वानुभूत दृश्य नहीं और घोष बाबू के अनुभवों का भी यथा-तथ्य चित्रण नहीं। इस समस्त वर्णन में पंडित जी कहानी-शैली की रोचक कल्पना काम कर रही है, जो समस्त वर्णन को सजीव और सार्थक बना देती है।

'जंगल की दुलहिन' भी पंडित जी की सुनिश्चित शैली और रोचक तथ्य-चित्रण का एक कालजयी कथात्मक लेख है। विषय के अनुसार वे भूमिका बनाते हैं : "घरों और मार्गों से दूर, वन के बीच खिले सौरभमय सुमनों का आनंद थोड़े ही व्यक्ति लेते हैं।XX ऐसे लोग उस दिव्य सुरा-रूपी गंध का पान भले ही कर लें, नहीं तो वे कमनीय फूल महककर यों ही मुरझा जाते हैं।" (पृ. 73)। इस भूमिका के बाद गया ज़िले के एक मनुष्य-भक्षी बाघ के वध का प्रसंग आरंभ होता है, जिसका समस्त मध्य संदर्भ 'जद्दू' और 'लूती' के प्रेम-प्रसंग से भरा हुआ है।' अगले ही दिन मध्याह्न को कई आदमी जद्दू के गाँव से ज़मींदार के पास आए और बड़ी उत्तेजना के साथ उन्होंने कहा– 'कमल जैसी सुंदर लड़की लूती को, जिसके रूप-लावण्य पर जद्दू निछावर हो चुका था, आज प्रातःकाल बघेरा उठा ले गया। लूती अन्य लड़कियों की भाँति पनघट पर गगरी भरने गई थी कि एकदम बघेरा टूट पड़ा और उसे मुँह में दबा चंपत हुआ।" (पृ. 76) आगे चलकर जद्दू और लूती प्रेतात्मा का विवाह गाँववाले रचाते हैं, क्योंकि जद्दू ने अपनी प्रेयसी की हत्या का बदला उस नरभक्षी बघेरा को मार कर लिया है। समस्त प्रसंग रोचक ही नहीं, अंचलीय परंपरागत विश्वासों और आस्थाओं की संस्कृति को भी अत्यंत रोचक शैली में प्रस्तुत करता है।

'जंगल का डाकू' में किसी डाकू का नहीं, बल्कि एक शेर के वध का ही चित्रण है, जो बड़ी चतुराई से दो बैलों की शिकार के पश्चात् मारा जाता है। इस लेख में शेर के मनोविज्ञान की यह विशेषता सामने आती है कि वह अपनी

शिकार के लिए बैल की बोली बोल लेता है, जो कोरी कल्पना नहीं, पंडित जी का अनुभव-जन्य सत्य है।

'काले कारनामे' का आरंभ भी पंडितजी अपनी बँधी-बँधाई शैली में इस चिन्तन के साथ करते हैं :

"बुभुक्षितः किं न करोति पापम्" वाली बात जिस प्रकार मनुष्यों के लिए लागू है, उसी प्रकार पशुओं के लिए भी। यह भी ठीक है कि जिन्हें भूख और उत्पीड़न के कारण ख़ून के आँसू नहीं बहाने पड़ते, वरन् जो धन-दौलत के दल-दल में गले तक फँसे रहते हैं, उनमें से बहुतेरे भूखों और असहायों की अपेक्षा अति जघन्य पाप करते हैं—शायद केवल स्वाद और विलासिता के कारण। शेर और बाघ भी, मनुष्य के ख़याल से पाप करते हैं—मनुष्य भक्षी हो जाते हैं।" (पृ. 95)

इस भूमिका पर खड़ी की जाती है 'काले कारनामे' की विषय-वस्तु—"असम में एक छोटी नदी के किनारे एक स्त्री का शव दाह-क्रिया के लिए लाकर ज्यों ही रखा गया, त्यों ही वहाँ एक कोने से अपने बच्चे के साथ एक शेरनी अचानक निकली।" (पृ. 95) उस स्त्री के दुःखी पति ने यह समझकर कि वह शेरनी शव को खाने उधर आ रही है, तीर चला दिया। भगदड़ मच गई और भागता हुआ वह भी गिर गया। शेरनी ने झपट्टा अवश्य मारा, किन्तु खाया नहीं। वस्तुतः वह शव खाने नहीं आई थी, अपने रास्ते जा रही थी। पंडित जी इस स्थिति पर पुनः चिन्तन की ओर बढ़ जाते हैं :

"कभी-कभी अति साधारण-सी बातों से ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, जिनका हमें स्वप्न में भी ख़याल नहीं आता और जिनके लिए कभी-कभी व्यक्तियों को ही नहीं राष्ट्र तक को रोना पड़ता है। घटनाएँ होतीं तो अनायास ही हैं, पर उनके कड़वे फल भोगने पड़ते हैं औरों को। पिता का पाप पुत्र को ले बैठता है। नेताओं और जेनरलों के साधारण से काम से देश की सत्ता कभी-कभी डूब जाती है।" (पृ. 96)

उस क्षेत्र में किसी ने नर-भक्षी शेर-शेरनी नहीं देखे थे, किन्तु इस घटना से नर-रक्त का उन्हें स्वाद लग गया और फिर आरंभ हुईं नर-हत्याएँ। अंत में उन नर-भक्षी शेर-शेरनी के वध के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़े, जिनका रोचक-उत्तेजक चित्रण इस लेख में किया गया है। 'रोमांचकारी कुश्ती' में शेर और सूअर की कुश्ती' और अंत में सूअर द्वारा शेर का वध भी शिकार-साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचना बन जाता है, 'दुर्घटना' शीर्षक लेख में तीन जंगली भैसों का सामना करनेवाले जर्मन-सेना के एक वीर सैनिक पाल ग्रेट्ज़ और उसके साथियों की वीरता का चित्रण किया गया है, जो पाठक को जंगली पशु-जगत् तथा रोडेशिया की भयंकर

भौगोलिक परिस्थितियों से परिचित कराता है।

'कड़क-धाँय, करि धड़ाम' में 'मेज़र फ़ोरन' और उसके नौकर 'हैमिसी' द्वारा जंगली हाथी के वध का वर्णन किया गया है, जिसके अंत में पंडित श्रीराम शर्मा का शिकार के संबंध में मौलिक दृष्टिकोण इन शब्दों में व्यक्त होता है :

"मेज़र फ़ोरन ने पास खड़े होकर एकटक अपने शिकार को देखा, पर घाटी का वातावरण मानो उनसे मूक भाषा में हाथी की ओर से कह रहा था–

"तग़ाफुल के आग़ोश में सो रहे हैं।

तुम्हारे सितम और मेरी वफ़ाएँ।

"वास्तव में सितम शिकारी की ओर से था और अपने स्थान तथा शरीर की रक्षा करने का अधिकार उस घाटी के स्थाई निवासी उस कुंजर को था ही। पर शिकार में इस दार्शनिक समीक्षा को स्थान कहाँ?" (पृ. 130)

प्राणों का सौदा पुस्तक के शिकार-संबंधी सभी लेख जहाँ साहित्यिक स्तर की ऊँचाइयों की ओर पाठक को ले जाते हैं, उसे यात्रा, संस्मरण, ललित निबंध आदि में अनुस्यूत कहानियों का आनंद या रोमांचकारी आस्वाद देते हैं, वहीं उनसे प्रकृति और मानव-नियति के अनेक चिन्तन-पक्ष भी उजागर होते हैं। भाषा का जैसा सरल प्रवाह तथा व्यंजकता इन लेखों में मिलती है, वैसी बहुत कम लेखकों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है।

जंगल के जीव

पंडित श्रीराम शर्मा की शिकार-संबंधी तीसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक, जिसका प्रकाशन सन् 1949 में प्रथम बार हुआ *जंगल के जीव* है। जैसाकि हम पीछे लिख चुके हैं, *शिकार* पुस्तक में पंडित जी के शिकार-संबंधी स्वानुभूत संस्मरण हैं और *प्राणों का सौदा* उससे भिन्न अन्य शिकारियों से संबंधित शिकार-परक घटनाओं का कथात्मक चित्रण है। *जंगल के जीव* इन दोनों पुस्तकों से भिन्न एक तीसरे पक्ष को प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में जंगल के जीवों के सजीव परिचय दिए गए हैं, जो संस्मरण, रेखाचित्र और कहानी की मिश्रित शैली का एक अभिनव प्रयोग कहे जा सकते हैं। पंडित जी ने इन लेखों को रेखाचित्र माना है। भूमिका में वे लिखते हैं, "प्रस्तुत पुस्तक–*जंगल के जीव*–में 9 जंगली जीवों के जीवन-स्कैच हैं।XX यह पुस्तक लेखक के पच्चीस वर्ष के अन्वेषण, निरीक्षण और प्रकृति-अध्ययन का फल है। प्रकृति-अध्ययन से तात्पर्य किताबी ज्ञान से नहीं है, वरन् उस प्रकृति-शास्त्र से है, जो हमारे देश में चारों ओर फैला हुआ है।" (भूमिका–1)

भूमिका से स्पष्ट है कि *जंगल के जीव* कोई विज्ञान-संबंधी पुस्तक नहीं

है, बल्कि एक शुद्ध साहित्यिक रचना है, जिसमें मानव-समाज और उसके परिवेश से जुड़े जंगली जीवों की प्रकृति-चर्या का अन्वेषण-पूर्ण चित्रण है। यह चित्रण लेखक के वर्षों के अनुभव का प्रतिफल है। प्रथम रेखाचित्र 'काला हिरन, द्रुतगामी' में हिरनों के जीवन के विषय में अत्यंत रोचक सामग्री साहित्यिक भाषा में मिलती है। प्रकृति के विभिन्न परिवर्तनों के बीच हिरनों का जीवन कैसे चलता है और मनुष्य उनके प्रति कितना कठोर या संवेदनशील है, यह इस रेखाचित्र का उल्लेख्य विषय बन जाता है। भारत में छह ऋतुएँ आती-जाती हैं। मनुष्य उन ऋतुओं में विभिन्न साधनों से अपना जीवन व्यतीत करता है, किन्तु जंगल-वासी हिरण किस प्रकार अपना जीवन-यापन करते हैं तथा साधन-संपन्न मानव-जाति से उन्हें कितने ख़तरे रहते हैं–यह सब इस रेखाचित्र में अत्यंत रोचक शैली में चित्रित हुआ है। पहले प्रकृति का ग्रीष्मकालीन यह दृश्य देखिए :

"गरमी के कारण मैदान की हरियाली परास्त ही नहीं, नष्ट भी हो चुकी थी। हाँ, आक और जवासा ग्रीष्मरानी के मुँह लगे नौकरों की भाँति पिट्ठू बने पनप रहे थे। उनकी असंख्य आँखें–फूल तिरछी नज़रों से लू के इशारे पर इधर-इधर घूम-फिरकर हरियाली की टोह लगाते और उन पर फ़ब्तियाँ कसते कि आख़िर वे ग्रीष्म-गरिमा को कब तक न मानेंगे।" (पृ. 1)

ग्रीष्म ऋतु के इस चित्रण के साथ हिरनों की जीवन-चर्या आरंभ होती है। लगता है, लेखक कोई कहानी कह रहा है–"गाँव से दक्षिण की ओर, रेलवे लाइन के पार बबूलों की छाया में हिरनों का एक झुंड आराम कर रहा था। कुछ सचेत संतरी ड्यूटी पर तैनात थे। कुछ हिरनियाँ बैठीं रौंथ कर रही थीं। दो-तीन पट्ठे हिरन बबूलों के तनों से अपनी देह रगड़ रहे थे। झुंड का नायक हिरन सुषुप्तावस्था में पड़ा अपने नेतृत्व के कारनामों का स्वप्न-सा देख रहा था और कान पर जब कभी कोई मक्खी आ बैठती, तब कान फटफटाकर उसे उड़ा देता था।" (पृ. 2)

पंडित जी ने हिरनों के रहन-सहन, स्वभाव, जन्म-मरण आदि के विषय में इसी पृष्ठभूमि पर अनुभव-जन्य जो चित्रण किया है, वह अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। हिरन-हिरनियों की भिन्न प्रकृति, नायक के प्रति आस्था, चलने-फिरने और दौड़ने की प्रक्रिया आदि का सूक्ष्म वर्णन पर्याप्त ज्ञान-बर्द्धक तो है ही, रोचक भी है। एक हिरनी झुंड से अलग कुछ दूर जाकर अपनी प्रसव-पीड़ा का विमोचन करती है और उसका मातृत्व विधाता की इस सृष्टि का कैसा सनातन सत्य बनकर सामने आता है, यह द्रुतगामी काले हिरन की जीवन-कथा का हृदय-हारी सजीव दृश्य है :

"चिन्तित और घबराई-सी हिरनी कुछ क़दम चलकर क़रीब ही झरबेरी की

आड़ में खड़ी हो गई और सचेत, पर करुण नेत्रों से उसने इधर-उधर देखा। विरहाकुल भूमि ने सहानुभूति प्रकट की, शिवनेत्र—सूर्य—ने भी हिंस्र जीव पर कड़ी नज़र रखी। प्रकृति ने प्रसूति-क्रिया में सहायक बनना सहर्ष स्वीकार किया। हिरनी बैठी। पीड़ा से कुछ बेचैन हुई। थोड़ी ही देर बाद वह घबराई-सी खड़ी हो गई और उसके क़रीब झिल्ली में लिपटा एक मांस-पिण्ड कँपा। पाँच मिनट में ही हिरनी ने उसे चाट-चूट कर साफ़ कर दिया, मानों किसी दक्ष दाई ने उसे स्नान कराकर तौलिया से पोंछकर सुखा दिया।'' (पृ. 4)

यह हिरन-शावक किन परिस्थितियों में पालित-पोषित हो अपनी जननी के हिरन-झुंड में सम्मिलित होता है और धीरे-धीरे बड़ा होकर यौवन के अनुभवों से गुजरता हुआ उस झुंड का नायक बनकर कैसे वही भूमिका निभाता है, जो उसके जन्म के समय पूर्व नायक निभाता था और अंत में एक शिकारी की गोली उसे खा जाती है—यह सब इस रेखाचित्र का रोचक विषय है। मनुष्य की दुनिया में तो हम सब बहुत कुछ नया-पुराना घटित होते देखते हैं, किन्तु जंगल के जीवों की दुनिया के भीतर संवेदना और अनुभव का पाथेय लेकर कितने लोग उतरना चाहते हैं? पंडित श्रीराम शर्मा हमें अपने अनुभवों की पगडंडियों से उसी दुनिया में ले जाते हैं।

'बघेरा : ख़ून का प्यासा' शीर्षक पढ़कर कोई भले ही किसी भयानक दृश्य की कल्पना करके पुस्तक के पन्नों से अपनी आँखें हटा ले, किन्तु इस प्रकार के दृश्यों से प्रकृति उसका पीछा नहीं छोड़ेगी :

''टिहरी से सवा मील दूर शिमलासू बाग में खड़े सेमल के पेड़ पर से तो जवानी की लाली बरस रही थी। सैमल के लाल फूल—पेड़ के दिल के उद्‌गारों का रूप बने—जोशे-जवानी में अपने गरम ख़ून का सुबूत दे रहे थे। सड़क के ऊपर लताएँ श्रृंगार किए, फूलों की बेदी लगाए, पत्तों के बीच खाली गोलाकार वृत्त की नथ पहने, नव पल्लवों से अलंकृत, शीलभार से कुछ झुकीं, मुस्कान पूरित अधरों और तिरछी नज़रों से टहलनेवालों को लुभाती हुईं अपने प्रेमी पेड़ों से मिल रही थीं।'' (पृ. 19)

प्रकृति की इस प्रेम-लीला से सारी सृष्टि संचालित है। जंगल के सभी छोटे-बड़े जीव भी इस प्रेम-लीला से अछूते नहीं हैं। विधाता ने हर जननी को अपने शिशुओं के पोषण के लिए स्तन्य की व्यवस्था की है। बघेरनी एक बार में ही चार शावकों को जन्म देती है और चारों को दूध पिलाकर पालती-पोषती है। छोटे-छोटे कई जंगली जीवों को खाकर वह स्वयं उनके पोषण के योग्य शक्ति अर्जित करती हैं। बघेरा-बघेरिनी भी उसी प्रकार के शिकारी हैं, जिस प्रकार के शिकारियों का

वर्णन *शिकार* और *प्राणों का सौदा* में किया गया है। पंडित जी ने जंगल के सभी जीवों को भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। इस रेखाचित्र को बघेरा-बघेरनी भी बाँगड़ू और चंचला नामों से संबोधित हैं। उनमें भी अपनी संतान के लिए उतनी ही चिन्ता है, जितनी मनुष्य को अपनी संतान की होती है। अंतर यही है कि मनुष्य ने एक सभ्यता विकसित कर ली है, जिसमें जीवन-यापन के अनेक साधन आविष्कृत हो गए हैं और उनका अपने-अपने हित में सदाचार या कदाचार—किसी भी प्रकार से उपयोग करने का अधिकार उसने पा लिया है। जंगल के जीव केवल अपने भोजन तक प्रकृति के 'जीवो जीवस्य भोजनम्' सिद्धांत पर निर्भर हैं। पंडित श्रीराम शर्मा के 'बघेरा : ख़ून का प्यासा' में बाँगड़ू और चंचला अपने शावकों को पोषण करने के लिए छोटे जीवों की तलाश में रहते हैं और अपना पेट भरने के साथ-साथ वे उनकी भी भूख मिटाते हैं। बघेरों का शिकार प्रायः पालतू बकरे, गाय, बैल, कुत्ते आदि भी हो जाते हैं। इसलिए गाँवों के लोग बघेरों से बहुत डरते हैं तथा आवश्यकतानुसार उनके वध की भी व्यवस्था करते हैं। पंडित जी ने इस रेखाचित्र में बघेरों के जीवन-यापन के ढंग पर रोचक शैली में प्रकाश डाला है तथा अपने अनुभवों के आधार पर बघेरों की विभिन्न प्रवृत्तियों को उजागर करने की चेष्टा की है।

'घड़ियाल : ख़ूनी' में घड़ियालों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। ये पानी के जीव हैं। गोह घड़ियालों को जन्म देती है। एक बार में 90-100 बच्चे तक पैदा हो जाते हैं। जिस घड़ियाल को पंडित जी अपने वर्णन का विषय बनाते हैं, वह एक गोह से चौरानवे अन्य बच्चों के साथ पैदा हुआ था। वह किस प्रकार जन्म के कुछ समय बाद ही पानी में चला जाता है और धीरे-धीरे बड़ा होकर किस प्रकार स्वयं अपने भोजन के लिए ख़ूनी बन जाता है, यह कथात्मक शैली में चित्रित किया गया है। घड़ियालों की उम्र 70-80 वर्ष से भी अधिक होती है तथा शारीरिक लंबाई 18-20 फ़ीट तक। इसी अनुपात में वह मोटा भी होता है। मानव-जीवन में जवानी का जो अर्थ है, घड़ियाल भी उससे अपरिचित नहीं होता। उसे भी प्रेम, विरह, घृणा, द्वेष आदि के भाव उद्वेलित करते हैं। पंडित जी ने घड़ियालों के मनोविज्ञान को भी प्राकृतिक संदर्भ में कई स्थानों पर चित्रित किया है। गोह से प्रणय और उसको पाने के लिए उनका परस्पर भिड़ना इस रेखाचित्र को पर्याप्त रोचक बना देता है :

"एक रात को तड़ातड़ और झड़ाझड़ की ध्वनि होती रही। प्रातःकाल लोगों ने यमदाढ़ और एक दूसरे घड़ियाल को रेतिया पर लड़ते देखा। दोनों घड़ियाल थूथने फाड़कर एक दूसरे पर आक्रमण करते। वे गजों ऊँचे खड़े हो जाते। खुली

थूथनों के वार ख़ाली जाते, तो कुल्हाड़ियाँ-सी चलती सुनाई पड़तीं। पूँछों के प्रहार भी होते। यमदाढ़ ने एक बार मौक़ा पाकर अपने प्रतिद्वंद्वी की गर्दन पर दाँत जमा दिए और कमर मोड़कर पूँछ का वह प्रहार किया कि प्रतिद्वंद्वी बेहोश-सा हो गया और थोड़ी देर बाद हार मानकर वह पानी में गोता लगाकर भाग गया।" (पृ. 55)

घड़ियालों के जीवन को साहित्य की शब्दावली में बाँध लेनेवाले पंडित श्रीराम शर्मा शेरों के विषय में भी अत्यधिक जानकारी रखते थे। 'शेर : शक्तिपुंज' रेखाचित्र में इस तथ्य का पर्याप्त प्रमाण मिलता है। शेर का जन्म कैसे होता है, कैसे पालन-पोषण होता है, भोजन के लिए वे क्या करते हैं, किस-किस जंगली जीव से उनका वैर-द्वेष होता है—आदि बातों का मनोरम चित्रण इस रेखाचित्र में किया गया है। हाथी और सूअर से शेर की शत्रुता के चित्र भी पर्याप्त सजीव हो उठे हैं।

पालतू हाथी तो सभी ने देखे हैं, किन्तु जंगली हाथियों का जीवन क्या-कैसा होता है—यह जानने के लिए 'हाथी : समझदार' रेखाचित्र पर्याप्त रोचक सिद्ध होता है। हाथी किस प्रकार झुंडों में रहते हैं और जिधर भी जाते हैं जंगली पेड़ों को हिलाते, झकझोरते, तोड़ते, खाते, एक अद्भुत मनोरंजक दृश्य उपस्थित कर देते हैं। एक झुंड की इस क्रिया यह दृश्य :

"लगभग दो मील जाने के बाद हाथियों का झुंड एक पहाड़ी पर चढ़ा और नीचे की घाटी में उतरने से पहले अगुआ ने अपनी सूँड़ को ऊपर उठाया और हवा में जाँचा और फिर वह झुंड नीचे उतरकर जंगल के एक सघन भाग में पहुँच बाँस और साल-वृक्षों की छाया में जा खड़ा हुआ। एक पट्ठे हाथी ने बाँस के एक झुरमुट से अपने शरीर का पिछला भाग लगाकर ठेला दिया, जिससे बाँस का झुरमुट चरमराकर गिर गया और बाँसों की पत्तियों को हाथी ने तोड़-तोड़ तथा सूँत-साँत कर मुँह में डालना शुरू किया। कई हाथियों ने साल-वृक्षों की शाखाओं से फुनगियाँ तोड़ीं और उन्हें सूँड़ में पकड़कर चँवर की भाँति ढोरने लगे।" (पृ. 80)

हाथियों की परस्पर लड़ाई के दृश्य भी इस रेखाचित्र की विशेषता है! अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वे मर मिटना भी पसंद करते हैं। स्थितियों को समझने की भी उनमें अद्भुत शक्ति होती है। जब कभी जंगल में आग लगती है, तब हाथी दूर से ही सूँड़ उठाकर दिशा का पता लगा लेता है।

'जंगली सूअर : सूरमा' में जंगली सूअर का, एक वीर जानवर के रूप में जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह पर्याप्त खोज-पूर्ण होने के साथ-साथ कल्पना

के कला-पूर्ण रंगों से भी आकर्षक हो गया है। जिस जंगली सूअर को पंडित जी अपने रेखाचित्र का विषय बनाते हैं, उसे वे 'सट्ट मोगरा' नाम देते हैं। उसे शकरकंद खाने में मज़ा आता है। किसान परेशान हैं। एक दिन उस पर किसान का घातक हमला धोखे से होता है और फिर यह दृश्य सामने आता है :

"उषा काल था। प्रभात होते ही चारों ओर चहल-पहल मच गई। सट्ट मोगरा लहू-लुहान भागा चला जा रहा था। एक गाँव के क़रीब होकर निकला, तो गाँव के कुत्ते उस पर टूटे। सट्ट मोगरा की गति धीमी थी, पर उसके शौर्य में तनिक भी अंतर नहीं पड़ा। कुत्तों की परवाह न कर वह बढ़ता ही रहा। पर दो कुत्तों ने उस पर पीछे से वार किया। सट्टमोगरा उन पर पिल पड़ा। एक को पकड़कर उसने पिछाई से चबचबाना शुरू किया और उसकी थूथनी तक चबा डाली। दूसरे कुत्ते को पाँच-छह गज आगे फेंक दिया और उसकी कमर तोड़ डाली।XX सट्टमोगरा रौद्र रूप धारण किए मर-मिटने को तैयार था। उसने समझ लिया था कि उसके बचने की कोई सूरत नहीं।" (पृ. 111-12)

'बया : अद्भुत' की भूमिका ग्रीष्म पर वर्षा की इस विजय से आरंभ होती है : "आकाश में मोर्चे लग गए। चरखियों पर तोपें चढ़ गई। महाभारत ठन गया। रणभेरी बजी और समर-यात्रा का गान आरंभ हुआ। गुडुम-गुडुम-गुम-गुम। थोड़ी ही देर में भयंकर गोलाबारी शुरू हुई। ऊपर से तोपें गरजती थीं। घररर और नीचे से पावस-चारण मयूर दिगंत व्यापी जयघोष करते थे। टपटप और टपाटप की चोट से ग्रीष्म की सेना पर आक्रमण हुआ। दिन भर यही क्रम रहा और अंततः पावस-सुंदरी का सिक्का जम गया। नवीन सम्राज्ञी की चारों ओर से वंदना होने लगी। प्रकृति ने हरी साड़ी पहनी। नदी-नद पूर्ण प्रवाह से बहने लगे।" (पृ. 113) प्रकृति के इस सजीव चित्रण से पंडित जी 'अद्भुत बया' का संबंध जोड़ते हैं। नदी किनारे बबूल के पेड़ों पर लटकते बया के सुन्दर घोंसलों का चित्र शब्दों की रेखाओं से बनाते हुए वे वई (मादा बया) और बया के मन तक पहुँच जाते है : "सूफ़ियाने रंग की वई और सर तथा छाती पर बसंती रंग से रँगा छैला बया सजीव ज्योति की भाँति पेड़ों पर उड़कर आते और अपनी गति को बिना रोके ही संकीर्ण मार्ग से अपने घर के अंतःपुर में प्रवेश कर महराब पर बैठ जाते। दो छोटे-छोटे पंख-विहीन बच्चे अपनी चोंच खोलते और बया बड़े अभिमान तथा प्यार के साथ उनकी चोंचों में चुगा रख देता था।" (पृ. 114) प्रकृति के इस सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित जंगल के जीवों की दुनिया में पक्षियों की भावोत्तेजक भूमिका में प्रस्तुत बया का जीवन पाठक को एक ऐसी ईश्वरीय सत्ता का दर्शन कराता है, जहाँ सब कुछ समरस और अभेद है। बया के घोंसले महलों में शोभा

बिखेरते हैं, पर महलवालों को यह पता नहीं कि वे किस प्रकार कितने श्रम से कलात्मक शैली में बनाए जाते हैं। पंडित श्रीराम शर्मा ने बया की सारी कारीगरी का सूक्ष्म निरीक्षण करके यह रेखाचित्र प्रस्तुत किया है, जो विश्व-साहित्य में बेजोड़ है।

जंगल के घातक जीवों की ओर सब लोगों का ध्यान जाता है और पक्षियों में सभी सुंदर पक्षी हमारे साहित्य में प्रसंग-वश स्थान पा लेते हैं, किन्तु जिस प्रकार 'बया' उपेक्षित रहता आया है, उसी प्रकार जानवरों में 'सियार' की उपेक्षा हुई है। शर्माजी ने उसकी सुध ली है और 'सियार : सयाना' शीर्षक रेखाचित्र लिखकर एक विशेष अभाव की पूर्ति की है। इसी प्रकार पक्षियों में 'बया' के अलावा उनका ध्यान जंगली मुर्ग़-मुर्गी की ओर भी गया है। 'जंगली मुर्ग़ : छैल-छबीला' रेखाचित्र इस सृष्टि का एक जीता-जागता दस्तावेज़ है। लोग अंडा देनेवाली शहरी मुर्ग़ी से ही और वह भी केवल अंडों तक परिचित हैं, पंडित जी पाठक को जंगली मुर्ग़ी और मुर्ग़ की एक अनोखी दुनिया में पहुँचाते हैं, जहाँ वह सब कुछ होता है, जो इंसानी जगत् में होता है देखिए। मुर्ग़ी अंडे देती है और अपने चुगे-पानी के लिए बाहर जाती है। चूहा मौक़ा पाकर बिल से बाहर आता है :

"XX चूहे की बन आई। नाक मटकाता हुआ वह बिल से निकला और घास तथा पत्थरों में लुकता-छिपता अंडों की ओर लपका। झाड़ी में घुसकर अंडों को तलाश करने में उसे बहुत देर नहीं लगी। छह अंडों को देखकर वह फूला नहीं समाया। यदि वह उन अंडों को अपने घर ले जा सका, तो वह बढ़िया दावत उड़े कि क्या कहना! एक अंडे को ठेल कर उसने अलग किया। उसके मुँह में वह आता न था। इसलिए उसे ठेल-ठालकर वह अपने बिल की ओर ले जाने लगा।" (पृ. 147)

लेकिन जंगल-राज में कब, कहाँ, क्या हो जाए! एक उल्लू झपटा और उसे पंजों में दबाकर ले गया। पेड़ पर बैठ कर उल्लू ने चूहे का भोग लगाया। उधर चूहे के आने में बहुत देर देख और भूख से व्याकुल बच्चों की चीं-चीं से परेशान होकर श्रीमती चुहिया रानी आवेश में आकर बाहर निकलीं, मानों प्रकट कर रही थीं कि चूहे, अगर गृहस्थी चलाने का शऊर न था, तो घर काहे को बसाया था?" (पृ. 148)

इसी प्रकार के संदर्भों में छैल-छबीले जंगली मुर्ग़ की कहानी आगे बढ़ती है और पाठक उसके जीवन की विविध अनोखी लीलाओं से परिचित होता है।

तीन धाराएँ

शिकार, प्राणों का सौदा और *जंगल के जीव* के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पंडित श्रीराम शर्मा के शिकार-संबंधी साहित्य की तीन धाराएँ हैं। प्रथम धारा वह है, जिसमें वे स्वयं शिकार खेलने के अपने अनुभवों को *शिकार* नामक कृति की रचनाओं का रूप देते हैं। उनके शिकार-संबंधी ये संस्मरण विषयवस्तु, अभिव्यंजना, भाषा तथा चिन्तन के विविध पक्षों पर खरे उतरते हैं। ये सभी संस्मरण अधिकांशतः उनके हिमालय-क्षेत्र के प्रवास-काल की अनुभूतियों की देन हैं। इन संस्मरणों में भारतीय वन-जीवन की विशेषताओं और विचित्रताओं का तो चित्रण मिलता ही है, साथ ही मनुष्य के उस अदम्य साहस, संघर्ष एवं जिजीविषा की भी कभी ख़त्म न होनेवाली कहानी मिलती है। पंडित श्रीराम शर्मा उस कहानी के स्वयं एक जीते-जागते संघर्षशील पात्र रहे हैं। यही वह क्षेत्र है, जहाँ मनुष्य को समाज की सेवा का सही अवसर मिलता है। अपने प्राण संकट में डालकर पहाड़ी ग्रामीण जनता को बघेरों, चीतों, शेरों, जंगली सूअरों आदि के अत्याचारों से मुक्त करना कोई सामान्य सेवा-कार्य नहीं है, जो पंडित जी ने दृढ़ निश्चय और साहस के साथ पूरा किया। *शिकार* पुस्तक के संस्मरण उनकी उसी रोमांचक जीवनी का अभिन्न अंग हैं। इन संस्मरणों की भाषा और अभिव्यक्ति शैली बेजोड़ है। रोज़मर्रा के ऐसे शब्द, जिनका कोई पर्याय शिष्ट भाषा में खोजने पर भी नहीं मिलेगा, पंडित जी ने इन संस्मरणों में सदा के लिए सुरक्षित कर दिए हैं।

प्राणों का सौदा के विषय में हम पहले लिख चुके हैं कि इसमें दूसरे शिकारियों के कृत्यों को आधार बनाकर लिखे गए वे लेख हैं, जिनमें पंडित जी की लेखन-कला का नया रूप मिलता है। अतः यह उनकी द्वितीय शिकार-धारा की कृति है। इसमें भी उनकी भाषा और अभिव्यंजन-शैली अपनी विशेष छाप छोड़ती है। *जंगल के जीव* में इन दोनों पुस्तकों से भिन्न जंगली जीवों की स्वतंत्रता का एक नया संसार मिलता है, जो सरल सहज भाषा में लिखे गए रेखाचित्रों की एक रचनात्मक सृष्टि है।

5

रेखाचित्र : बोलती प्रतिमा

विशाल भारत के संपादक पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी के उन शीर्षस्थ लेखकों में से एक थे, जो त्याग-तपस्या की मशाल जलाए साहित्य-साधना और पत्रकारिता के आदर्श पथों को एक मज़दूर की भाँति निरंतर समतल बनाते रहे। एक समय था, जब हिन्दी के बड़े-बड़े साहित्यकार उनकी लेखनी का लोहा मानते थे। *बोलती प्रतिमा* की 'चित्रण' शीर्षक से लिखित भूमिका में वे कहते हैं :

"स्कैच लिखना—लेखनी की सहायता से ज्यो-का-त्यों चित्र खींच देना—कोई आसान काम नहीं। इसके लिए लेखक को कठोर साधना करने की ज़रूरत पड़ती है।XX हिन्दी में स्कैच लिखने की कला का अभी प्रारंभ ही हुआ है। स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा (संपादक जी) ने इस विषय में पथ-प्रदर्शक का काम किया था।XX स्वर्गीय संपादक जी के बाद यदि किसी ने इस विषय में थोड़ी-बहुत सफलता प्राप्त की है तो वे हैं *बोलती प्रतिमा* के सुलेखक श्रीयुत् श्रीराम शर्मा। वे इस विषय में स्व. पं. पद्मसिंह शर्मा के असली उत्तराधिकारी हैं। जिस समय *विशाल भारत* में श्रीराम जी के शिकार-संबंधी स्कैच निकल रहे थे, उस समय पूज्य पंडित जी ने इन पंक्तियों के लेखक को लिखा था—'श्रीराम जी तो उत्तरोत्तर ग़ज़ब ढहा रहे हैं। बंदूक़ से बढ़कर इनकी लेखनी का निशाना बैठता है, पढ़नेवाला तड़पकर रह जाता है। नज़र से बचाने के लिए इनके दंड पर भैरव जी का गंडा बाँध दीजिए।" (पृ. 4)

यह भूमिका सन् 1937 ई. में प्रकाशित संस्करण की है, जब *बोलती प्रतिमा* का प्रथम बार प्रकाशन हुआ था। 'गुटबंदी और प्रचार की दौड़ में यदि हिन्दी के विद्वान् आज पंडित श्रीराम शर्मा की इस महान् रेखाचित्र-कृति को भूल गए हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं; किन्तु जिस भारतीय जनता के जीवन को आदर्शों के रास्ते पर चलाकर सुख-समृद्धि और स्वतंत्रता के वैभव से भरने की कामना में पंडित जी निरंतर अपनी लेखनी का सदुपयोग करते रहे, वह जनता

उन्हें कभी नहीं भूल पाएगी।

इस पुस्तक में कुल 15 रेखाचित्र हैं, जिनमें से कुछ को कहानी भी माना गया है, किन्तु वे भी पंडित जी की जानी-मानी दुनिया के पात्रों के रेखाचित्र ही हैं। 'बोलती हुई प्रतिमा', 'ठाकुर की आन', 'हरनाम दास', 'गीली लकड़ियाँ', 'वरदान', 'पीतांबर', 'वसीयत', 'फ़िरोज़ाबाद की काल कोठरी', 'अपराधी', 'चन्दा', 'रतना की अम्मा', 'इकाई का सौदा', 'शीर्षकहीन कहानी', 'ऐमुन तैमुन और तिरिकिटता', 'इदं न मम'—ये वे रेखाचित्र हैं, जिनके (मुश्किन को छोड़ शेष) पात्र भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन के इतिहास का अमर अंग बन गए हैं। इन सभी पात्रों से पंडित जी का निकट का संबंध-संपर्क रहा है। उनकी पीड़ाओं-विवशताओं को पंडित जी ने केवल बाहरी आँखों से ही नहीं, अंतश्चक्षुओं से भी देखा और अपने शब्दों में बाँधा है। हिन्दी साहित्य की अधुनातन सभी विचारधाराओं, वादों-विवादों और चिन्तनों का इन रेखाचित्रों में अंतर्भाव देखकर आश्चर्य होता है कि जो आंदोलन हिन्दी साहित्य में अब उठाए जा रहे हैं, उनकी नींव पंडित जी की *बोलती प्रतिमा* कृति स्वतंत्रता से पूर्व ही डाल चुकी थी। उदाहरणार्थ, किसानों-मज़दूरों के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के साथ-साथ पंडित जी दलितों महिलाओं के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं रखते, बल्कि आंदोलन एवं संघर्ष के नए-नए द्वार भी खोलते दिखाई देते हैं। सांप्रदायिकता के ख़िलाफ़ उनका यह उद्‌घोष किसकी आँख नहीं खोलेगा?

"देश की ख़ातिर हम यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि यह मुहर्रम और रामलीला ढकोसला हैं। मंदिर, मस्ज़िद, गायत्री, और कलमा सब फ़िज़ूल हैं, जब उनसे मानवता की रक्षा नहीं होती। वे तो अमीरों और झगड़ालू लोगों के अखाड़े बन गए हैं। वहाँ पर सांप्रदायिकता के कीटाणु पनपते हैं।" (पृ. 94)

स्मरण रहे, ये वही पंडित श्रीराम शर्मा हैं, जिन्होंने भारत की स्वाधीनता के यज्ञ में अपने तीन बच्चों तक की आहुतियाँ दीं, वर्षों जेल की यातनाएँ भोगीं, स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद पंडित गोविन्द वल्लभ पंत के मंत्री बनाने के आग्रह को अस्वीकार कर दिया, पुत्र (रमेश कुमार शर्मा) को पुलिस उपाधीक्षक बनाने के लिए तत्कालीन गृह-मंत्री (उ. प्र.) पंडित जगन प्रसाद रावत द्वारा सहमति के लिए प्रस्तुत किए गए प्रपत्र को चार टुकड़े करके वापस दे दिया, आँखों की रोशनी चली जाने पर अस्पताल में चिकित्सा के लिए भेजी गई सरकारी अनुदान राशि का चेक यह कहते हुए लौटा दिया कि स्वतंत्रता-संघर्ष में की गई अपनी किसी भी सेवा का कोई प्रतिदान मैं नहीं चाहता। ऐसे आदर्शात्मा लेखक की लेखनी का स्नेह हाड़-मांस के जिन पात्रों को *बोलती प्रतिमा* में प्राप्त हुआ है, वे कम

भाग्यशाली नहीं हैं।

पंडित जी ने प्रथम रेखाचित्र 'बोलती हुई प्रतिमा' में, जिसके नाम पर इस पुस्तक का नामकरण किया गया है, अपने कॉलेज-जीवन के एक साथी 'जगन्नाथ' का रुग्णावस्था का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं :

''एक दिन मैं वसंत की तरुणाई में मटरगस्ती शिकार को गया।XX मटरगश्ती शिकारी की दशा तृप्त शेर की-सी होती है, जो मस्त चाल से अपनी माँद की ओर लौटता है और घात लगाकर नहीं चलता।XX एक मील पीछे एक सुहावनी कुटिया छोड़ आया था। केले और पपीते के पेड़ कुटिया से ऊपर उठे हुए दूर से दिखाई पड़ते थे। गाँव से लगी वह कुटिया बड़ी आकर्षक मालूम होती थी। वहाँ कुछ देर आराम करने के विचार से मैं लौट पड़ा।XX कुटिया पर आया तो चारों ओर शांति का राज्य दिखाई पड़ा।'' (पृ. 19)

वह कुटिया, चारों ओर शांति का राज्य और उसमें एक रोगी! यही वह व्यक्ति है, जो कभी खुर्जा के जे. ए. एस. हाईस्कूल में पंडित जी के साथ पढ़ता था। अब देखिए उस सहपाठी जगन्नाथ का शब्दों में खींचा गया पारदर्शी चित्र! ''पास जाकर देखा तो मैं दंग रह गया। मसहरी के भीतर एक अचल शरीर चित्त पड़ा था। टाँगें सिकुड़ीं और इतनी पतली मानों पतले बाँसों पर ख़ाल चढ़ा दी गई हो, और हाथ पौनी-से पतले। छाती इतनी भीतर को घुसी हुई कि पीठ से लगी हुई और इतनी गहरी कि उसमें सेर-दो-सेर अन्न भरा जा सकता था। हाँ, उस चेहरे में दो आँखें ही थीं, जिनकी पुतलियाँ चलती थीं और जिनके चलने से उस अचल शरीर की स्वामिनी आत्मा आँखों से आस-पास कहीं उलझी मालूम होती थी। हाथों की उँगलियाँ कभी-कभी हिल जाती थीं; पर उनमें उतनी गति नहीं थी कि वे किसी चीज़ को उठा सकें।'' (पृ. 20)

यह दयनीय रूप था सहपाठी जगन्नाथ का, जब पंडित जी ने वर्षों के पश्चात् प्रथम बार उसे देखा। उन्होंने जब कहा कि ''आपकी कुटिया तो आश्रम-सी है।'' (पृ. 21), तो जगन्नाथ का जो उत्तर था, वह इस रेखाचित्र को कला के स्तर पर एक दार्शनिक भूमिका में उतार देता है—''क्षमा कीजिए। ऐसा समझना भ्रम है। ऊपर देखिए, वह छिपकली दीवार पर बैठी है। यदि वह बोल सकती, तो मुझे विश्वास है, वह इस पर उतना ही अपना अधिकार समझती, जितना कि मैं। छप्पर से लगी बेल में दर्जी (फुटकी) पक्षी का जोड़ा प्रतिवर्ष घोंसला बनाता है और अपने बच्चों को इसी में पालकर बड़ा करता है। उनके गार्हस्थ्य जीवन के सुख को मैं पड़ा-पड़ा यहीं से देखा करता हूँ। उन पक्षियों का ख़याल है कि यह कुटिया उनकी है। सामने की दीवार में प्रतिवर्ष लखैरियों को झींगुर पकड़कर

खींचते देखता हूँ, उनकी भी यही भावना हो सकती है कि यह कुटिया उनकी है। और भी कितने ही ऐसे प्राणी हैं, जो इस कुटिया पर अपना इतना ही अधिकार समझते हैं। रही मेरे यहीं पड़े रहने की बात, सो यह आवागमन तो बना ही रहता है। यह संसार-चक्र ऐसे ही चला करता है और उसकी महफ़िल का कभी ख़ाली मकाँ होता नहीं।'' (पृ. 22)

जीवन के दर्शन की गहराइयों में उतरे जगन्नाथ आगे पंडित जी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं :

''गत चौदह वर्ष से मैं बीमार हूँ, और तेरह वर्ष से इसी प्रकार इसी आसन पर पड़ा हूँ। पहले के चार-पाँच वर्षों में हाथ-पैर कुछ काम करते थे। मैं उन्हें पसार भी लेता था, अब वे भी रूठ गए हैं। बीमारी की क्या कहूँ! पहले-पहल छाती पर कुछ छाले उठे। बस, जले के फफोले-से। सबका ख़याल हुआ कि मकड़ी फर गई है, इसलिए घर पर ही साधारण दवा-दारू होती रही।XX 1920 में तो फफोलों का ऐसा प्रकोप हुआ कि सारे शरीर पर वे फैल गए। हथेली और पैर के तलुओं तक पर वे निकल पड़े। मैं चारपाई पर गिर गया।'' (पृ. 23-24)

जगन्नाथ की अत्यंत करुणा-मय दशा का आगे के पृष्ठों में जो चित्र अंकित किया गया है, वह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति का हृदय हिला देनेवाला तो है ही, भारत में चिकित्सा-संबंधी दुर्दशा और मानवीय निष्करुणा का भी जीता-जागता चित्र है। इस चित्र में सामाजिक और पारिवारिक संबंधों के अनेक पहलू भी उभरते हैं, जिनके उत्तर धीरे-धीरे और लंबित होते जा रहे हैं। इन्हीं संबंधों के बीच माँ का यह संबंध, जो आज भी जीवित है—जगन्नाथ के शब्दों में :

''आपके प्रश्न से मुझे माँ का स्मरण हो आया। उनके देहावसान को अभी पाँच ही वर्ष बीते हैं। मैं भी क्रोध किया करता था। किस पर! माँ पर। सुबह-शाम पाख़ाना-पेशाब वही कराती थीं। वे बड़ी तपस्विनी थीं। अपने अध्यवसाय और घोर परिश्रम से उन्होंने हमें पाला था। प्रतिदिन प्रातःकाल तीन बजे उठतीं। वृद्धा हो गईं थीं, परन्तु हम तीनों भाइयों में से कोई भी उन्हें सुख न दे पाया। घर का भी काम करतीं, और मेरी भी परिचर्या करतीं। कभी उनके आने में देर हो जाती, तो मैं उनसे बिगड़ पड़ता, और जब खाना लातीं, तब मैं रूठ जाता। वे मेरी इसी चारपाई की पाटी पकड़कर बैठ जातीं और मनाकर पुचकार कर कहतीं, 'ले बेटा रोटी खाले। मुनुआँ, रूठते नहीं हैं खाले। मेरे मरने के बाद तुझे कोई नहीं मनाएगा। माँगेगा तो खाना मिल जाएगा, नहीं तो मनानेवाला मेरे बाद कोई नहीं बैठा।' जब कभी मुझे कष्ट होता है और समय पर मेरा काम नहीं होता—न जाने क्यों मेरी प्रत्येक बात का समय बँध गया है, और एक मिनट की देरी में

कष्ट होने लगता है, तब मैं घबराकर चुपचाप रोने लगता हूँ और माँ की याद में हिलकी बँध जाती है।" (पृ. 27)

जगन्नाथ एक पढ़ा-लिखा विवेकशील व्यक्ति है। देश की विभिन्न समस्याओं पर उसकी सूझ-बूझ इतनी गहरी है कि पंडित जी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। गणेशशंकर विद्यार्थी उसे देखने कई बार आए हैं और किसानों, दलितों आदि की समस्याओं पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ है। *विशाल भारत* के पूर्व संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं :

"इस लेख में वर्णित जगन्नाथ जी कोई कल्पित व्यक्ति नहीं, वरन् एक जीवित प्राणी हैं। उनके दुःखों की कथा सर्वथा सत्य है। हमने स्वयं उन्हें अपनी आँखों से देखा है। उनकी स्मरण-शक्ति और प्रवंध-शक्ति को देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। गत चौदह वर्ष उन्होंने जिस प्रकार बिताए हैं, उसे घोर तप कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। दुःख और कष्ट के निम्नतम धरातल पर पहुँचकर भी जगन्नाथ के मनुष्यत्व में अद्भुत सजीवता है।" (पृ. 34)

'ठाकुर की आन' रेखाचित्र में ठाकुर बलवंत सिंह का जो चित्र अंकित किया गया है, वह व्यक्ति के स्वाभिमान और आदर्शों का यथार्थ दृश्यांकन है। लाला भगवानदीन ज़मींदार है। वह नौकर को भेजकर बलवंत सिंह से लगान का तक़ाजा करता है। बलवंत सिंह ठाकुर हैं, वे अपने वचन के पक्के तथा अपमान न सह सकनेवाले व्यक्ति हैं। लाला उन्हें अपमानजनक शब्द बोलकर उत्तेजित कर देता है :

"भगवानदीन—मैं नहीं जानता। मेरे जाने तुम अपनी लुगाई का लहँगा बेचकर रुपया लाओ। बस आधे घंटे की मुहलत है।

"बलवंत सिंह—(आवेश को रोककर) अच्छी बात है। लुगाई का लहँगा बेचकर ही लगान आज चुकाऊँगा। आध घंटे की मुहलत है न!

"ज़मींदार—(शौच का लोटा उठाते हुए और त्यौरियाँ चढ़ाते हुए) हाँ, एक मिनट ज़्यादा न हो। वह देखो सामने घड़ी है।" (पृ. 40)

बलवंत सिंह क्रोध में भरे घर गए और तलवार लाकर लाला भगवानदीन का सिर ज़मीन पर लुढ़का दिया। यही दशा उसके नौकर की भी हुई। फिर वे फ़रार हो गए। लाला के घरवालों ने बलवंत सिंह को पकड़वाने के लिए हज़ारों रुपए ख़र्च किए। पुलिस ने भी उनकी गिरफ़्तारी के लिए पाँच सौ रुपयों का इनाम रखा, पर वे पकड़े नहीं जा सके। वे ग्वालियर राज्य के एक कोने में छिपे रहे। वहाँ दूसरा विवाह किया, दो पुत्र हुए। तीस वर्ष हो गए। एक दिन उन्होंने अपने लड़कों से कहा—'अब मेरे मरने का समय निकट है। मेरी गिरफ़्तारी के

लिए पाँच सौ रुपयों का इनाम है।XX उस पाँच सौ की रक़म में ढाई सौ रुपए अपने काम में लाना और ढाई सौ की लागत के पच्चीस लहँगे गाँव की बहू-बेटियों को बाँट देना।'' (पृ. 42)

लड़कों को समझाकर बलवंत सिंह ने स्वयं को उनके माध्यम से गिरफ़्तार कराया तथा मुक़दमे की दूसरी पेशी तक बलवंत सिंह का देहावसान हो गया। अंत में लेखक ने लिखा है : ''भगवानदीन की ज़मींदारी मिट गई और मिट गया साथ में उनका वंश, पर बलवंत सिंह की औलाद अब भी है और उनके कुटुंब के लोग उनका नाम बड़े आदर से अब भी लेते हैं।'' (पृ. 42) लेखक को इस व्यक्ति के चरित्र में कुछ ऐसी बातें दिखाई दीं, जिनके कारण यह रेखाचित्र लिखा गया। जो बात इस ठाकुर के चरित्र में लेखक को प्रभावित करनेवाली है, वह है उसका ईमानदारी से श्रम-पूर्वक ज़मींदार का लगान चुकाने का पक्का इरादा और जो बात लेखक को खटकनेवाली है वह है ज़मींदार का शोषण की सीमा तक जाकर किसान की स्त्रियों तक अपमान का भाव पहुँचाना। संपूर्ण रेखाचित्र अंग्रेज़ों के दलाल ज़मींदारों के अत्याचारों को बेनक़ाब करता हुआ उन स्थितियों को उजागर करता है, जो एक ईमानदार स्वाभिमानी आदमी को अपराध की दुनिया में धकेलती हैं।

'हरनाम दास' रेखाचित्र में 'हिन्दू-संसार' अख़बार की मानहानि संबंधी 1927 ई. की कार्यवाही में गवाही देने स्वेच्छा से आए एक संन्यासी जी, उनका परिचय पंडित जी को इस प्रकार देते हैं ''इनका नाम हरनाम दास है। पहले ये बहुत बड़े व्यापारी थे। इनका लाखों का कारोबार बग़दाद और बसरा में था। अब मुनि की रेती में रहते हैं।'' (पृ. 48) पंडित जी ने रेखाचित्र के आरंभ में लिखा है : ''ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला के बीच टिहरी राज्य का एक स्थान है—मुनि की रेती। गंगा जी पर बसे होने पर भी वह अब उजाड़-सा हो गया है।'' (पृ. 43) हरनाम दास परिस्थिति-वश इसी स्थान पर पकौड़ी की दुकान करते हैं और पंजाबी पकौड़ीवाला के नाम से एक अत्यंत ईमानदार और उदार व्यक्ति के रूप में प्रसिद्धि पा चुके हैं। पंडित जी ने उनको रेखाचित्र का विषय बनाकर पहाड़ी जीवन की विशेषताओं, प्रकृति की विचित्रताओं और व्यक्ति के चरित्र की ऊष्माओं—उज्ज्वलताओं का हृदय-हारी चित्रण किया है। वे लिखते हैं, ''हरनाम दास के स्वभाव पर मुझे आश्चर्य था। खाने-खिलाने में उसकी आँखों से संतोष प्रसन्नता और आत्म-गौरव की ज्योति चू रही थी। उसकी आँखे रसीली-सी थीं। जो बात करता था, वह ऊँचे स्वर में। भीतर और बाहर वह एक-सा ही प्रतीत होता था।'' (पृ. 48)

हरनाम दास के जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ाव इस रेखाचित्र को एक

कहानी-जैसी रोचकता प्रदान करते हैं। जिस संन्यासी की चर्चा इस रेखाचित्र में आती है, वे स्वामी कृष्णाचार्य थे। लाखों की संपत्ति का बग़दाद में स्वामी बना अंबाला ज़िला के विरामपुर गाँव में जन्मा हरनाम दास जीवन में जो उतार-चढ़ाव झेलता है, वे मनुष्य के भाग्य की शक्ति पर गहरे रंग बिखेरते हैं। अंतिम दिनों में वह कलकत्ता की तुलापट्टी में आकर दूध की दुकान करने लगा था। सन् 1931 ई. में पंडित जी ने यहीं उसको बीमारी की दशा में अकेला मर्माहत देखा था और गाँव जाकर रहने की राय दी थी। वे लिखते हैं, "हरनाम दास की समझ में यह बात आ गई और उसने 5 मई 1932 को कलकत्ता छोड़ दिया और आजकल वह गाँव में कुटिया पर है।XX हरनामदास की जीवन कथा बड़ी उपदेश-प्रद है। धन-संपत्ति के गर्व से मदान्ध लोगों को उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्य का भाग्य पलटने में कोई देर नहीं लगती। धन और शान का घमंड वृथा है। अकबर और शाहजहाँ के अनेक वंशज टुकड़े-टुकड़े के लिए तरस रहे हैं।" (पृ. 61)

पंडित श्रीराम शर्मा के रेखाचित्रों में जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं। 'गीली लकड़ियाँ' यदि साहबेरिया की क़ैद से भागे एक क़ैदी के साहस की कथा है, तो 'वरदान' में नगेन्द्र—गौहाटी का एक युवक, आज़ादी का सैनिक अपनी प्रेमिका से स्वयं को दूर चले जाने का वरदान माँगता है। 'पीतांबर' में एक परोपकारी पशु-चिकित्सक पीतांबर का आकर्षक शब्दचित्र आँखों के आगे खिंच जाता है। वह कोई कॉलेज-शिक्षा प्राप्त आजकल का पशु चिकित्सक नहीं था। पंडित जी के शब्दों में, "पीतांबर जात का कुम्हार, स्वभाव का ब्राह्मण और पेशे से किसान था। मेरा पड़ोसी, पास के गाँव अंगदपुर का रहनेवाला—नैष्ठिक पीतांबर पशु चिकित्सा का आचार्य था। पशुओं का कोई रोग ऐसा न था, जिसकी अचूक ओषधि वह न जानता हो।" (पृ. 71)

'वसीयत' में पंडित जी अपने एक मित्र के छोटे भाई के निधन के अवसर पर उसके क्रिया-कर्म को वर्णन का आधार बनाते हैं और मित्र की 'वसीयत का पत्र' उन क्रिया-कर्मों के पीछे छिपे सामाजिक अंधविश्वासों तथा रीति-रिवाजों के विरोध में लिखा गया एक दस्तावेज़ बनता है। इस रेखाचित्र में धर्माडंबरों पर करारी चोट की गई है।

'फ़ीरोज़ाबाद की कालकोठारी' का रेखाचित्र धर्मांधता का अत्यंत करुणा-जनक प्रसंग है। इसमें 14 अप्रैल 1934 ई. को फ़ीरोज़ाबाद में डॉक्टर जीवाराम शर्मा को सपरिवार धार्मिक दंगाइयों द्वारा उन्हीं के घर में पेट्रोल डालकर जला दिया जाता है। यह रेखाचित्र आज भी ऐसे प्रश्नों के उत्तर चाहता है, जिनका समाधान मिले बिना भारत की राष्ट्रीयता और मानवता कभी सुरक्षित नहीं रह सकती।

'अपराधी' रेखाचित्र में किसानों के खेती-संबंधी झगड़ों का मार्मिक चित्रण

किया गया है। मोहनलाल और पृथ्वीपाल के परिवारों में पाँच बीघा खेत के लिए जो विवाद उठ खड़ा होता है, वह न पंचायत से हल होता है और न अदालत से। झगड़ा इतना बढ़ता है कि दोनों परिवार उसकी आग में स्वाहा हो जाते हैं। हत्यारे पृथ्वीपाल को नीचे की अदालत से सज़ा मिलने के बाद ऊपर की अदालत से मुक्ति मिल जाती है और तव उसकी उद्दंडता सीमा लाँघने लगती है। फिर मोहनलाल की क्रोधाग्नि उसकी हत्या का कारण बनती है। वह भी अपराधी वन जाता है। लेखक ने गाँव के जीवन में इस संघर्ष की विभिन्न परिस्थितियों और चरित्रों का मन-मस्तिष्क को झकझोरनेवाला चित्रण किया है। 'चंदा' रेखाचित्र में चंदा चमार पर होनेवाले ज़मींदार के अत्याचारों का रोएँ खड़े कर देनेवाला वर्णन है। 'रतना की अम्मा' में रत्ना चमार की माँ पर होनेवाले अत्याचार चित्रित हुए हैं। इन दोनों ही रेखाचित्रों में दलित वर्ग को पंडित जी की अगाध सहानुभूति मिली है। अंग्रेज़ी शासन-काल में ज़मींदारी की विभिन्न समस्याएँ नए-नए रूपों में पैदा होती रहती थीं। पंडित जी ग्रामीण-जीवन में रचे-बसे साहित्यकार थे। उन्होंने उन समस्याओं के जीते-जागते चित्र *बोलती प्रतिमा* में प्रस्तुत किए हैं। 'इकाई का सौदा' में संकट प्रसाद का ज़मींदार विक्रम सिंह से धीरे-धीरे बढ़ता संघर्ष ऐसी सीमा तक पहुँच जाता जहाँ से आगे 'संकट' के सामने विक्रम की हत्या करके अपने सार्वजनिक अपमान का बदला लेने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं बचता। हत्या के बाद वह अदालत में आत्मसमर्पण कर देता है। 'शीर्षकहीन कहानी' में प्रताड़ित चमेली नामक चमार युवती को लेखक की सहानुभूति मिलती है। ज़िलेदार के अत्याचारों का जैसा सजीव चित्रण इस रेखाचित्र में किया गया है, वह जनता पर होनेवाले अंग्रेज़ी शासन-काल के अत्याचारों का जीता-जागता इतिहास है।

'ऐमुन तैमुन और तिरिकिटता' को रेखाचित्र की शैली में लिखी एक कहानी भी कहा जा सकता है। इसमें गाँव से भागकर कलकत्ता पैदल ही पहुँचने की हिम्मत, वीच में वर्षा के कारण एक गाँव में रुकना और फूस से पटे एक मकान के चबूतरा पर बैठे एक वृद्ध से शरण पाकर रात्रि-विश्राम करना तथा स्वयं को ब्राह्मण बताकर उस बूढ़े की पुत्री से बाद में विवाह करके वहीं बस जाना चित्रित है। बूढ़े ने स्वयं को भी ब्राह्मण बताया था। अंत में एक पंडित उधर से निकलता है और उस युवक बुलाकी का भेद खोलता है कि वह ब्राह्मण नहीं, नाई है। बूढ़ा इस रहस्य को जान लेने के पश्चात् कहता है :

"तुम अपनी जात बदलकर और धोखा देकर हमें ठगना चाहते थे। सो तुम नहीं कर पाए। तुमी ऐमुन तैमुन (एक हाथ दूसरे पर उस्तरे की भाँति करते हुए) तो आमी (मैं) तिरिकिटता।" (पृ. 143)

इसमें संदेह नहीं कि यह रेखाचित्र भी पंडित श्रीराम शर्मा ने एक सत्य प्रसंग पर लिखा है, किन्तु इसमें उनकी लेखन-शैली और कल्पना का अद्भुत मिश्रण हुआ है।

'इदन्नमम'[1] में रूस के एक देशभक्त युवक मुश्किन की सत्यकथा अंग्रेज़ी पत्रिका *वाइड वर्ल्ड* की फ़ाइल के आधार पर लिखी गई है—ऐसा लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है। इस कहानी को भी रेखाचित्र की शैली की रचना कहना असंगत न होगा। मुश्किन के साहस, धैर्य, सहनशीलता, विवेक और विलक्षण कुशाग्रता के जो चित्र इसमें अंकित हैं, वे निष्कर्ष के साक्षी हैं। कहीं-कहीं वे चित्र स्वयं लेखक के जीवन से साम्य रखते मालूम पड़ते हैं, ख़ासतौर से मुश्किन को जेल में दी गई यातनाएँ और पुलिस तथा जेल के अधिकारियों को चक़मा देनेवाली घटनाएँ।

बोलती प्रतिमा के सभी रेखाचित्रों के मध्य से गुज़रती हुई कोई भी दृष्टि इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करेगी कि पंडित श्रीराम शर्मा के पास अपने परिवेश को सजीव रूप में चित्रित करने की अद्भुत प्रतिभा तथा कला-कुशलता थी। वे अंग्रेज़ी शासनकाल की सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियों को एक गहरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ तत्कालीन भारतीय इतिहास का अध्याय बनाने में सफल हुए हैं। वे ग्रामीण जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों के निष्पक्ष चित्रकार हैं। किसानों, विशेषकर, दलितों पर होनेवाले ज़मींदारों, सरकारी नौकरों तथा पुलिस के अत्याचारों को उन्होंने जिस संवेदनशील भाषा में अंकित किया है, वह हिन्दी साहित्य में उनके समय की क्रांतिमुखी भाषा बन गई है। *बोलती प्रतिमा* का हर पात्र जीवन की विविधता में साहस से जूझता और अन्याय के प्रतिरोध में जीता-मरता है। प्रकृति के मध्य सहज ग्रामीण जीवन की विशेषताओं को उभारते हुए पंडित श्रीराम शर्मा एक ऐसे राष्ट्र का स्वरूप अंकित करते हैं, जो ज़मीन से जुड़ी संस्कृति के कारण अंग्रेज़ों के अत्याचारों में भी पराजित नहीं हुआ। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके संबंध में लिखा है :

"आज से कई वर्ष पहले पूज्य द्विवेदी जी (महावीर प्रसाद) के दर्शनार्थ हम दोनों ने दौलतपुर की यात्रा की थी। उस समय द्विवेदी जी ने मुझसे कहा था—"चौबे जी, इनसे (श्रीराम जी से) हिन्दी लिखना सीखिए। मुझे इस बात से अत्यंत हर्ष हुआ था।" (पृ. चित्रण' का अंतिम)।

मुझे आज भी यह कथन अपने समकालीन लेखकों के संदर्भ में पर्याप्त सार्थक प्रतीत होता है।

संदर्भ

1. यह एक रूसी कहानी का शर्मा जी द्वारा किया गया मौलिक रूपांतर है।

6

आत्मकथा-प्रधान संस्मरण

पंडित श्रीराम शर्मा हिन्दी में संस्मरण-विधा के पुरोधा माने जाते हैं। उनके संस्मरणों के संग्रहों में *संघर्ष और समीक्षा* प्रमुख है। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के एक पराक्रमी सेनानी के रूप उन्होंने जो कुछ भोगा, देखा और अनुभव किया उसके अनेक जीते-जागते चित्र इस पुस्तक में मिलते हैं। यह एक ऐसी साहित्यिक कृति है, जो राष्ट्रीय आंदोलनों के रोमांचकारी अनुभवों को अत्यंत रोचक भाषा में प्रस्तुत करती है। सन् 1942 का भारतीय स्वंत्रता-संग्राम इस पुस्तक के अधिकांश संस्मरणों में पुनः सृजित हुआ है।

भारत की आज़ादी का संग्राम 1857 ई. के प्रश्चात् जिन रूपों में, जिन साधनों से और जिन मंचों पर लड़ा गया, वे सब 1942 ई. की क्रांति के रूप में विस्फोटित हुए। पंडित जी ने इस क्रांति में एक वीर, पराक्रमी, साहसी और कुशल सैनिक के रूप में ही नहीं, एक सुयोग्य सेनानी के रूप में भी भाग लिया था, जिसका इतिहास साक्षी है। *संघर्ष और समीक्षा* में उन्होंने स्वयं को आत्म-प्रशंसा से बचाते हुए निरभिमान होकर अपने संघर्षों के ही नहीं, अन्य लोगों के संघर्षों के भी प्रामाणिक संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। इनमें से अधिकांश संस्मरण *विशाल भारत* आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। भारत सरकार के भूतपूर्व गृहमंत्री (स्व.) कैलासनाथ काटजू ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है :

"मैंने श्रीराम जी को सन् 1942 के आंदोलन-संबंधी ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाए गए आगरा षड्यंत्र केस के मुख्य अभियुक्त के रूप में भी देखा था। उन पर अनेक दफ़ाएँ लगी थीं, जिनमें से दो तो ऐसी थीं कि उनमें दंडित होने पर उन्हें फाँसी भी हो सकती थी। आगरा सेशंस अदालत में, मैं उनका और उनके साथियों का वकील होकर गया था। मुसीबत का समय था, बहुत कम लोग साथ देते थे। आगरावालों ने तो समझ ही लिया था कि श्रीराम जी को फाँसी होगी। अभियुक्त के रूप में भी वे अडिग ही थे। मेरे आग्रह पर ही वे मुक़दमे को क़ानूनी

तौर पर लड़ने को तैयार हुए थे।XX

"*संघर्ष और समीक्षा* में श्रीराम जी ने 1942 के आंदोलन का एक ऐसा सजीव और निष्पक्ष चित्र खींचा है कि पढ़नेवाला मंत्र-मुग्ध हो जाता है। एक तो उनकी लेखन-शैली बड़ी हृदयग्राही है, तिस पर भी उनकी सूक्ष्म विश्लेषण-शक्ति ने तो सोने में सुगंध का काम किया है।" (पृ. IV, VI)

श्री कैलासनाथ काटजू की विद्वत्ता, भाषा-ज्ञान, विधि-विशेषज्ञता, देश के लिए त्याग-तपस्या से वे सब लोग सुपरिचित हैं, जिन्हें भारतीय स्वाधीनता-संग्राम और उसके पश्चात् की राजनीति का सम्यक् ज्ञान है। पंडित जी के संबंध में उनका पूर्वोक्त मत पर्याप्त महत्त्व रखता है। *संघर्ष और समीक्षा* के संस्मरण इसका समर्थन करते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंडित श्रीराम शर्मा स्व. श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के आग्रह पर अध्ययन छोड़कर *प्रताप* के संपादन के साथ ही भारतीय राजनीति में एक सक्रिय योद्धा के रूप में आ गए थे। धीरे-धीरे उनका संपर्क महात्मा गाँधी से हो गया था और वे सेवाग्राम में प्रतिवर्ष कुछ माह प्रवास करके सेवा-कार्य किया करते थे। सन् 1942 का स्वतंत्रता-आंदोलन भारतीय आक्रोश की किस सीमा का परिणाम था, इसका उल्लेख करते हुए पंडित जी ने लिखा है :

"सन् 1939 से 8 अगस्त 1942 तक *हरिजन* को पढ़ जाइए। लेख क्या हैं, मानों आग्नेय अस्त्र हैं, दिल पर सीधी चोट करनेवाले। जिसने भी वे पढ़े, उस पर जादू-सा हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानों स्वर्ग से कोई देवदूत अपनी अमृतवाणी से मुर्दों में जान डालने आया हो। संपूर्ण देश के कार्यकर्ता और नेता एक तरफ़ और महात्मा जी की प्रखर सूझ एक ओर। चारों ओर क्रांति का वातावरण था। ऐसा मालूम होता था, जैसे *हरिजन* का प्रत्येक अक्षर देश में बारूद बिछा रहा हो। उत्साह और आज़ादी की लगन पहाड़ी नदी के समान निनाद करती आ रही थी।" (पृ. 3)

इस पृष्ठभूमि में सन् 1942 ई. का आंदोलन 9 अगस्त को गाँधी के 'भारत छोड़ो' नारे के साथ किस प्रकार आरंभ हुआ, उसका ऐतिहासिक दस्तावेज़ और नेताओं की सक्रियता-निष्क्रियता (दोनों का) चित्रण *संघर्ष और समीक्षा* में उसी हृदय-स्पर्शी भाषा में प्रस्तुत किया गया है, जिसका नमूना ऊपर के उद्धरण में मिलता है। सर्व श्री गोविन्दवल्लभ पंत, जगनप्रसाद रावत, रफ़ी अहमद किदवई, द्वारकाप्रसाद मिश्र, आदि नेताओं से भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य पंडित श्रीराम शर्मा को सौंपे गए थे। उनके सामने सबसे कठिन समस्या यह थी कि "सन् 1942

के आंदोलन से पहले महात्मा गाँधी को छोड़कर किसी और बड़े नेता का दिमाग़ राजनीतिक दृष्टि से साफ़ नहीं था। पं. जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और महात्मा गाँधी तीनों की विचारधाराएँ एक-सी नहीं थीं। विशेषकर रूस के महायुद्ध में शामिल हो जाने के बाद। पंडित जी (नेहरू) के दिलो-दिमाग़ की रस्साकसी उनके उन दिनों के भाषणों से स्पष्ट है।xx सुभाष बाबू अपने विचारों में बहुत-कुछ साफ़ थे, पर देश छोड़कर बाहर जाने से पूर्व वे कुछ विशेष कार्य न कर सके।" (पृ. 2-3)

जिन अन्य नेताओं का गाँधी जी को इस आंदोलन की सक्रियता में विशेष सहयोग मिला, उनमें सरदार पटेल तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के नाम पंडित जी ने बड़े आदर से लिए हैं और अपने परम मित्रों—पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, रफ़ी अहमद किदवई आदि की आरंभिक उदासीनता का उल्लेख करने से वे नहीं हिचके हैं।

आंदोलन छिड़ने से पूर्व और छिड़ जाने पर पंडित श्रीराम शर्मा ने गाँधी जी द्वारा सौंपे गए दायित्वों को किस प्रकार संघर्ष करते हुए पूरा किया तथा गिरफ़्तारी के किस-किस प्रकार चक्कर चले, यह सब संघर्ष की सचमुच अत्यंत रोमांचक कहानी है, जिसको दाँव पेंच, गिरफ़्तारी, ठुकाई-पिटाई और अपमान, आदि संस्मरणों में प्रभावपूर्ण साहित्यिक शैली में चित्रित किया गया है। कहीं वे पुलिस को झाँसा देते हैं स्वयं को मिलिट्री का ठेकेदार बताकर और कभी महिला की साड़ी पहनकर पुलिस की आँखों में धूल झोंकते हुए बच निकलते हैं। उन्हीं के शब्दों में :

"स्त्री-पुरुष दोनों ही राज़ी हो गए। पुरुष का नाम था कामता प्रसाद, जो मेरे साथ मुक़दमे में घसीटे गए और महिला थीं उनकी पत्नी।xx योजना का ड्राफ़्ट और जितने भी काग़ज़ थे, उनको आग के सुपुर्द कर दिया। पंत जी से हिसाब की डायरी तथा अन्य काग़ज़ भी लेकर अँगीठी में जला दिए।xx ऐसा मालूम होता था, मानों अग्नि-स्फुल्लिंग विहँसते हुए व्योमाकाश में विलीन हो गए।xx 1500 रुपए पंत जी से लेकर अपने पास रख लिए और धोती के ऊपर साड़ी पहन ली। जीवन में पहली बार साड़ी पहनी थी। यों लहँगा तो एक बार सरदार भगत सिंह को पहनाया था। दिमाग़ में बात थी कि अर्जुन भी तो द्वापर में वृहन्नला बने थे।" (पृ. 30)

सात दिसंबर 1942 ई. को पंडित श्रीराम शर्मा गिरफ़्तार हो गए। मुक़दमा चला। सेशन अदालत में उन्हें ले जाने की जो व्यवस्था थी, उसमें पुलिस अधिकारियों में एक सूबेदार जुम्मन ख़ाँ था। वह जब भी पंडित जी को अदालत ले जाने के

लिए गाड़ी में आता था सिपाहियों को लेकर, तब अपने साथ दो बच्चे लाता था। उन बच्चों के संदर्भ में पंडित जी की जो स्वाभाविक मनोदशा चित्रित है, वह 'सूबेदार जुम्मन ख़ाँ' संस्मरण का एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग है। यह प्रसंग राजतंत्र की सभी सीमाएँ तोड़कर मानवीय संवेदना की गंगा-सी प्रवाहित कर देता है। पंडित जी लिखते हैं :

"एक दिन बच्चों को देखकर न जाने क्यों दिल भर आया और सूबेदार जुम्मन ख़ाँ से पूछ बैठा—आप इन बच्चों को इस तेज़ लू में अपने साथ क्यों लाते हैं?

"मेरे ऊपर ख़ुदा का क़हर नाज़िल हुआ है। पंडित जी।' जुम्मन ख़ाँ ने ठंडी साँस खींचकर कहा और बच्चों की ओर संकेत करके बोला, 'इनकी माँ का इंतक़ाल हो गया है। अब इनके लिए मैं ही माँ और बाप हूँ। यदि दूसरी शादी करता हूँ तो नई बीवी इनकी ज़िन्दगी ख़राब कर देगी। पुलिस लाइन में किसके पास इन्हें छोड़ें? इसलिए ये मेरे साथ ही रहते हैं।'

"जुम्मन ख़ाँ की बातों से एक धक्का-सा लगा और दिल ने झुककर सहानुभूति के दो फूल अश्रुकण—दिवंगत आत्मा के प्रति चढ़ा दिए।" (पृ. 36-37)

संघर्ष और समीक्षा में संस्मरणों की ऐसी स्थितियाँ विभिन्न रूपों और प्रसंगों में चित्रित मिलती हैं, जिनमें हिन्दू एवं मुसलमान, क़ैदी और पुलिस—जैसे भेद मानवीय संवेदना के सहज प्रवाह में बाधा नहीं डालते। ऐसे प्रसंगों से ही भारतीय संस्कृति की विशिष्टताओं की झाँकियाँ भी मिलती हैं। दुःख इस बात का है कि ज्यों-ज्यों हमने आज़ादी का रथ आगे बढ़ाया है, त्यों-त्यों हमारे समाज से जुम्मन ख़ाँ और पंडित श्रीराम शर्मा ग़ायब होते जा रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति द्वारा फेंके गए संस्कृति के कचरों ने हमारे देश के अनेक माता-पिताओं को अपने बच्चों के भविष्य के प्रति इतना उदासीन बना दिया है कि बचपन से ही वे जीवन की गंदगी बटोरने लगे हैं और माँ-बाप धन कमाने की भागं-भाग में नितांत निष्करुण एवं बेसुध होते जाते हैं।

संघर्ष और समीक्षा के संस्मरण जहाँ देश की राजनीति का आँखों देखा इतिहास रचते हैं, वहीं वे अनुभवों की भित्ति पर जीवन-दर्शन का शिलालेख भी लिखते हैं। बड़े-से-बड़े संघर्ष में—संकट में कभी भी हार न माननेवाले पंडित जी एक योद्धा ही नहीं, पथ-प्रदर्शक भी हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि हमारे आस-पास की दुनिया हमारे ही विचारों और व्यवहारों से बनती है। 'रामकली' संस्मरण का प्रारंभ वे इन पंक्तियों से करते हैं :

"पुराणों में जहाँ नरकों का वर्णन आता है, वहाँ कुंभीपाक और रौरव नरकों

को बहुत बुरा कहा गया है। रौरव तो घोरतम नरक है और उससे कुछ घटकर कुंभीपाक है। मनुष्य स्वर्ग और नरक अपने विचारों, व्यवहार और दूषित परिस्थितियों से अपनी चारों ओर बना लेता है। विचारों के ताने-बाने से वह एक ऐसा जाल तैयार करता है कि उसके सान्निध्य से ही अपरिचित और तटस्थ आदमियों को तकलीफ़ होती है। उनका दम-सा घुटने लगता है और उनका जीवन दुःखी और क्लेश-पूर्ण हो जाता है।'' (पृ. 63)

सन् 1942 ई. के आंदोलन के समय जेलों की जो दुर्दशा थी, उसका अनुभव-जन्य चित्रण करते हुए पंडित जी फ़तहगढ़ की सेंट्रल जेल के अपने साथी क़ैदियों की मनोदशा का वर्णन करते हैं। उनके मध्य स्वयं को किस प्रकार से स्वस्थ-प्रसन्न रख पाते हैं, इस प्रश्न का उत्तर इस संस्मरण में दिया गया है, जो मनुष्य को ईश्वर की अनंत सृष्टि के सौहार्द से जोड़ता है। आगरा जेल में उन्होंने एक 'पंडुक' पक्षी का जोड़ा पाला था और फ़तहगढ़ जेल में उन्होंने एक गलगल, जो मैना के वंश का पक्षी है, पाली थी। उसका नाम उन्होंने रामकली रखा था। स्मरण रखने की बात है कि पंडित जी ने अपने शिकार-संबंधी लेखों से लेकर रेखाचित्रों, संस्मरणों आदि सबमें पशु-पक्षियों को कोई-न-कोई नाम दिया है। 'गलगल' का यह सौभाग्य है कि उसे इतना सुंदर नाम मिला! उसकी पूरी जाति निहाल हो गई। पंडित जी ने गलगलों के संपूर्ण चरित्र को भी 'रामकली' के माध्यम से अपनी लेखनी का प्रसाद दे डाला। देखिए :

''फ़तहगढ़ सेण्ट्रल जेल की रसोईघरवाली बैरक के आसपास तो सर्वभक्षी कौओं और छोटी गलगलों के झुंड के झुंड आते थे। जिस स्थान पर राशन बँटता वहाँ पर तो गलगलें आतुर बनी कातर दृष्टि से मँडराया करतीं। रोटी का टुकड़ा या रँधे चावल मिल जाते, तो उन्हें गपक लेतीं। मक्खन पर तो वे मुग्ध थीं। मक्खन कहीं जरा-सा भी मिलता, तो वे उसे बड़े स्वाद से सटकतीं। यदि कहीं मक्खन का परिमाण कुछ अधिक हुआ, जिसे कोई गलगल एकदम न निगल पाती, तो उसे हथियाने के लिए और गलगलें उसकी ओर बढ़तीं और दुष्ट कौआ अवसर पाते ही उधर झपट्टा मारता। उससे बचने के लिए वे बैरक में उड़ जातीं।xx पाँच नंबर बैरक के पीछे वाले मैदान में अपना अड्डा रहता चर्ख़ा कातने और बैठने का। बैरक में तो मैं रात को बंद होने पर और दिन में थोड़ी देर के लिए जाता। कंबल बिछाए बाहर ही डटा रहता—गर्मियों की दुपहरी को छोड़कर खाने की खोज में वहाँ भी कभी-कभी गलगलें आतीं।xx क्यों न उनको लपकाया और हिलाया जाए। मक्खन पर तो वे जान देती हैं।xx मैंने मक्खन की एक गोली उनकी ओर फेंकी। बस फिर क्या था! टोली-की-टोली में धमाचौकड़ी मच गई।

एक गलगल ने वह मक्खन घर पाया और फिर उससे छीनने के लिए उसकी साथिन गलगलें पिल पड़ीं। मक्खन लेनेवाली गलगल—रामकली—उड़कर पास के आम के पेड़ पर जा बैठी।" (पृ. 66)

तो यही वह रामकली है, जिसको पंडित श्रीराम शर्मा अपने संस्मरणों का अभिन्न अंग बना लेते हैं। रामकली का कुछ दिनों बाद अपने शावक के साथ आना और उसका भी हिल जाना, पंडित जी के जेल-जीवन में दोनों का अभिन्न साथी बन जाना मानवीय संवेदना के उच्चतम सोपानों का दिग्दर्शन है। साहित्य में इस प्रकार के संस्मरण अद्‌भुत ज्ञान-ज्योति जगाते हैं।

संघर्ष और समीक्षा के संस्मरणों का महत्त्वपूर्ण भाग वह संस्मरण भी है, जो पंडित जी ने 'आंदोलन के बाद' शीर्षक से लिखा है। आज़ादी की प्राप्ति के बाद काँग्रेस की जो स्थिति हुई और भारत की राजनीति ने महात्मा गाँधी की हत्या के बाद जो रूप धारण किया, उसका इस संस्मरण में इतना स्पष्ट और यथार्थ विश्लेषण किया गया है कि उसके निष्कर्ष इतने वर्षों के पश्चात् आज भी सत्य सिद्ध हो रहे हैं। पंडित जी ने लिखा है :

"चंड-मुंड की भाँति हमारे आधुनिक औद्योगिक नेता देश के आर्थिक जीवन पर अपना अधिकार जमा रहे हैं। चारों ओर नवीन प्रकार के शासन तैयार हो रहे हैं। रूस जिस प्रकार लोकतंत्र के तट पर पहुँचकर लोकतंत्र-विरोधी प्रगति में फँस गया है, अमेरिका जिस प्रकार प्रतिक्रियावादियों का अड्डा है, उसी प्रकार हमारे देश में भी वास्तविक स्वतंत्रता का दूसरा ही रूप आ रहा है। देश का ही नहीं, वरन् विश्व का त्राण महात्मा गाँधी के आदर्शों पर चलने से संभव है, पर जिन प्रवृत्तियों की ओर हमने संकेत किया है, उन्हीं दुर्घर्ष प्रवृत्तियों के कारण हमारे ही जीवन में विश्व के महाप्राण बापू का वध किया गया। उस वध की नैतिक ज़िम्मेदारी काँग्रेस जनों पर भी है।" (पृ. 131)

पंडित जी का यह गंभीर चिन्तन और विश्लेषणपूर्ण संस्मरण, जिसका उपर्युक्त उद्धरण है, सन् 1948 ई. के जून के *विशाल भारत* में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने सावधान किया था कि "जो परिस्थिति आज है, उससे तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि महात्मा गाँधी के बताए मार्ग पर हमलोग नहीं चले, यदि जनता-जनार्दन की ख़ातिर हम वास्तविक आज़ादी नहीं ले पाए और हम अपना राष्ट्रीय चरित्र नहीं बना सके, तो हमारे देश में गुंडाशाही बढ़ने की आशंका है और चोरबाज़ारी करनेवालों के हाथ में सत्ता सरकने का ख़तरा है।" (पृ. 131)

पंडित श्रीराम शर्मा ने भारत के भविष्य की अंतिम संस्मरण में गंभीरता

से समीक्षा करते हुए लिखा है कि– "स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व काँग्रेस किसानों और ग़रीबों का प्रतिनिधित्व करती थी। महात्मा गाँधी ग़रीबों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करते थे, वरन् सच्चे अर्थों में ग़रीब भारत की आत्मा उनके द्वारा मुखरित होती थी। किसानों और ग़रीबों की ख़ातिर उन्होंने देहात में रहना शुरू किया था। तीसरे दर्जे से चलते थे, पर आज़ादी के बाद देश में ऐसी प्रवृत्ति चल पड़ी कि पढ़े-लिखे लोग और नेता देहात में रहना नहीं चाहते। उन्होंने जीवन का जो स्तर बनाया है, वह देहात से मेल नहीं खाता। सेवा-राजनीति के स्थान में सत्ता-राजनीति चल पड़ी है। अंग्रेज़ों के समय में सरकारी नौकरी को प्रतिष्ठा का साधन समझा जाता था, पर आज़ादी के बाद नेतागिरी न केवल प्रतिष्ठा का साधन है, वरन् जीविका का भी एक साधन बन गई है।" (पृ. 167-68)

इतने वर्षों के उपरांत हम भारत की राजनीति और निरंतर बढ़ती समस्याओं पर ध्यान देते हैं, तो पंडित जी का उपर्युक्त कथन उनकी राष्ट्र-भक्ति और भविष्य दृष्टि की महत्ता का सहज अनुमान करा देता है। वे अपने देश की ज़नता को सावधान करते हैं कि "जब तक मनुष्य में नैतिकता और नागरिकता नहीं आएगी तब तक उसका विकास संभव नहीं। नैतिकता बाज़ार में नहीं बिकती, उसका प्रारंभ घर में होता है। जिस व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में नैतिकता और नागरिकता नहीं है, वह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता।" "पृ. 171)

इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं कि "भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश में गाय आर्थिक व्यवस्था का केन्द्र-विन्दु है, झूठी पूजा और कोरी भावना के लिए नहीं, वरन् उससे अधिक दूध प्राप्त करने के लिए।xx गृह-उद्योगों और लघु उद्योगों के बिना न तो इस देश की बेकारी दूर होगी और न आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति हो सकेगी। गाँववाले कपड़ा, चीनी, तेल आदि के लिए शहरों की ओर भागते हैं। यदि देश की 75 प्रतिशत आबादी को स्वावलंबी बनना है तो यह प्रयास होना चाहिए कि जो काम घर में हो सकता है वह गाँव में न हो, जो गाँव में हो सकता है वह शहर में न हो। किसान की ख़ून की कमाई का अधिकांश भाग छिन जाता है।xx हमारा अटल विश्वास है कि गाँधी-मार्ग पर चलने से ही देश की समृद्धि संभव है।" पृ. 172)

राष्ट्र-चिन्ता के विभिन्न आयामों तक पाठक को पहुँचानेवाले पंडित श्रीराम शर्मा के संस्मरण आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने लेखन के समय थे। अत्यंत सरल-सहज भाषा में पंडित जी ने जो चित्र अनुभव के विशाल पटल पर अंकित किए हैं, वे हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं और भारत की ज़नता को विकास का सही मार्ग दिखलाते हैं।

संस्मरण-सीकर

संघर्ष और समीक्षा पुस्तक में पंडित जी ने अपने राजनीतिक जीवन के संस्मरण प्रस्तुत किए हैं, जिनमें राष्ट्रीय जीवन-संबंधी विचारों का मंथन भी मिलता है। *संस्मरण-सीकर* में संगृहीत संस्मरण उनके जीवन के अन्य पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। सामाजिक और पारिवारिक जीवन में उन्होंने जो कुछ देखा और भोगा उसकी विविध रूपात्मक झाँकी इस पुस्तक में मिलती है। वस्तुतः इस पुस्तक के संस्मरणों से यह सिद्ध होने लगता है कि वे अपनी आत्म-कथा तो लिखना चाहते हैं, किन्तु उसी प्रकार क्रम-वद्ध रूप में नहीं और न उस शैली में जिस प्रकार आत्म-कथाएँ लिखी जाती हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक के प्रथम संस्मरण का अधिकांश भाग माँ से सुनी बातों पर निर्भर है। वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं :

"अपने जन्म के विषय में माँ मे जो बातें मालूम हुई, उन्हीं को सीधे-साधे शब्दों में यहाँ व्यक्त किया जाता है। गर्भ में आते ही माँ बीमार पड़ गईं। प्रति दिन ज्वर रहता। बीमारी में भी उन्हें काम करना पड़ता। तीन-चार मास बाद तो उनकी हालत चिन्ताजनक हो गई। पिताजी पूरे वैद्य थे, पर फिर भी दो-चार वैद्यों को दिखाया गया। रोग का निदान तो नहीं हुआ पर सबने यही कहा कि उनके जीवन को बड़ा ख़तरा है।xx धीरे-धीरे हालत सुधरती गई और फाल्गुन शुक्ला 13 को इस लेखक का जन्म हुआ। जन्म के समय वह एक मांस-पिण्ड-सा ही था। न सिर पर बाल थे, न शरीर ही विकसित था।xx रुई में दबाकर उसे रखा जाने लगा और आठ दिनों में ही उन्हें पता चल गया कि उनका बालक शरीर को विकसित कर रहा है।" (पृ. 2)

माँ से सुनी आरंभिक जीवन-कथा गाँव में जन्मे अधिकांश मनुष्यों की कथा है, यों कहिए कि अधिकांश तत्कालीन साहित्यकारों की कथा है। पंडित श्रीराम शर्मा के समय हिन्दी का साहित्यकार आज के साहित्यकार से नितांत भिन्न स्थिति में था। यदि उनके आत्म-संघर्ष और नैतिक मानदंडों को समझ लिया जाए तो उस युग के अधिकांश साहित्यकारों के जीवन को समझना आसान हो जाता है। वे लिखते हैं—"बचपन की अनेक घटनाओं में से इन पंक्तियों के लेखक को एक टायफ़ाइड का ख़याल है। शायद आठ वर्ष की अवस्था में वह टायफ़ाइड हुआ था, जो 81 या 82 दिन में उतरा था। पचास लंघन हुए थे और तीस दिन बेहोशी रही थी। गाँव में कोई इलाज तो था ही नहीं।" (पृ. 3)"

घर-गाँव की इन परिस्थितियों में पले श्रीराम शर्मा आगे लिखते हैं कि, "भयंकर लू में ग्यारह बजे से लगाकर मध्याह्न के तीन बजे तक कबड्डी और हुलक डंडा का दौर रहता। शरीर पर केवल कुरता-धोती ही रहता। भयंकर दोपहर में

नंगे सिर और नंगे पैर खेल-कूद जारी रहता।'' (पृ. 5)

बचपन की ये यादें पंडित जी की जीवनी का अविस्मरणीय अध्याय हैं। एक ओर वे साहित्यकार हैं, जो आजकल के सुख-साधनों में पलते हैं और कैफेघरों में बैठकर साहित्य के अनुभव चुनते हैं, दूसरी ओर पंडित जी का बचपन से देहावसान तक का संघर्ष-मय जीवन, जिसमें उन्होंने अनुचित ढंग से कभी किसी साधन को स्वीकार नहीं किया। वे लिखते हैं, ''अब अपने जीवन के 63वें वर्ष में जन्म, बाल्यकाल और स्कूली जीवन के स्वास्थ्य का ख़याल करके दिल में एक हूक-सी उठती है। माता के गर्भ में आने के बाद अब तक जीवन-संघर्ष का एक अनवरत दौर रहा है।xx नदी सागर में गिरने से पूर्व मीलों पहले सागर की गर्जन को सुनती है और शांत भावना से उसमें लीन होने के लिए चली जाती है। ठीक उसी भाँति यह लेखक उस मंज़िल की ओर बढ़ रहा है, जहाँ अंत में सबको पहुँचना है।'' (पृ. 7)

संघर्षों के बीच से गुज़रती ज़िन्दगी के मध्य शर्मा जी ने समाज के जिन अंधविश्वासों, रीति-रिवाजों, भ्रमात्मक मान्यताओं आदि का चित्रण किया है, वह सब उन समस्याओं का दिग्दर्शन है, जिनके कारण वे सनातनी ब्राह्मण होते हुए भी आर्यसमाजी विचारों के समर्थक बन गए थे। पिताजी की अस्थियों का अल्पायु में विसर्जन करने गंगाघाट जाना और वहाँ पंडों का दुर्व्यवहार देखना उनके विचारों में दृढ़ता का मुख्य कारण बना। उन्होंने मृत्यु से पूर्व, ''यह इच्छा जरूर प्रकट की और वह वसीयत के तौर पर अब भी है कि मरने के बाद इन पंक्तियों के लेखक के शरीर को फ़ार्म के ही किसी स्थान पर जलाया जाए और अस्थियों को या तो किसी फलदार पेड़ की जड़ में लगा दिया जाए या फ़सलदार खेत में, ताकि धरती माता को कुछ पोटाश और फ़ॉस्फेट की खाद मिला जाए। जो गंगा में अस्थि-विसर्जन करते हैं, उनसे हमें कोई विरोध नहीं। अपनी माँ का अस्थि-विसर्जन भी हमने हरिद्वार में किया, पर अपनी तो यही इच्छा है।'' (पृ. 24-25) स्पष्ट है कि पंडित जी के संस्मरण जीवनी का वह पृष्ठ भी खोलते हैं, जिसका एक-एक अक्षर उनकी उदार भावनाओं से भी जुड़ा हुआ है। यह कहना युक्ति-संगत होगा कि *संस्मरण-सीकर* पुस्तक में संकलित अधिकांश लेख पंडित जी की जीवनी का ही अंग हैं, जो संस्मरण के रूप में लिखे गए हैं। 'कठमुल्लापन' में वे अपनी आर्यसमाजी भावनाओं की तह में जाते हैं और उन भावनाओं के कारण उनकी जीवन-शैली में जो परिवर्तन आता है, उसका चित्रण करते हैं। यथा :

''मूर्तिपूजा और अंधविश्वास के विरुद्ध आर्यसमाज के उत्सवों में भजन सुने तो अपने गाँव के आसपास देवी-देवताओं की मूर्तियों पर तो ज़ेहाद ही बोल

दिया। अपने छोटे भाई जगन्नाथ और चचेरे छोटे भाई स्व. जीवाराम के साथ देवी-देवताओं की मूर्तियों को नियमित रूप से कुओं में फेंका जाता। कुओं की सफ़ाई पर वे मूर्तियाँ निकलतीं और उनकी स्थापना होती।" (पृ. 27)

इस प्रकार सभी वर्णनों में जीवनी का सु-रस पंडित जी की दार्शनिक मनीषा को झकझोरता चलता है और बीच-बीच में वे इस प्रकार की शब्दावली में स्वयं को अनावरित भी करते जाते हैं :

"कठमुल्लापन मन की एक प्रवृति होती है, जिसमें विरोध और आलोचना के लिए कोई स्थान नहीं। साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र पर यदि कठमुल्लेपन का आवरण चढ़ जाता है, तब कठमुल्ला विशेष प्राणी हो जाता है। कठमुल्ला उस क्रोधित शेर और सूअर के समान होता है, जो ताव दिलाने पर अपनी और दूसरे की जान तक लेने में कोई परवाह नहीं करता। अपनी विचार धारा में उन्मत्त वह अपने को ख़ुदाई फ़ौजदार समझता है।" (पृ. 29)

इस कठमुल्लेपन से पंडित श्रीराम शर्मा कई बार लड़े हैं और अपने आग्रहों के पीछे छिपे आर्यसमाजी दर्शन को समझाने में सफलता प्राप्त की है। इन्हीं कारणों से वे अपने क्षेत्र में छोटे-बड़े सबके स्नेह-भाजन बन गए थे।

नवलगढ़ की नौकरी, हेडमास्टर शिप से इस्तीफ़ा, 'हिन्दू-संसार' मानहानि-केस, स्वर्गीय आसामी बाबू, हत्या का षड्यंत्र, मानसिंह का डाकू--दल, संघर्ष और परीक्षा, आतिथ्य-अवतार, पं. मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी, ठाकुर झंडू सिंह, ठाकुर नारायण सिंह, डाकू बीरे से भेंट, तुला सिंह, दिशाशूल, डकैत यदुनाथ सिंह—सहृदय और उदार, दुर्घटनाएँ, एक अलिखित अध्याय, पर्लबक दंपति से भेंट, तथा स्वर्गीय मोहन लाल—ये सब संस्मरण भिन्न-भिन्न शीर्षकों में पंडित जी की जीवनी का ही भाग हैं। यह बात दूसरी है कि इनसे वह क्रमबद्धता इस पुस्तक में नहीं आ सकी, जो एक जीवन-संबंधी पुस्तक को एक विधा के रूप में प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि पंडित जी के जीवन पर उनके ये लेख प्रभूत प्रकाश डालते हुए भी 'संस्मरण' विधा तक सीमित रह गए हैं या यों कहिए की जीवनी-लेखक की शैली को ही बदल देते हैं। पंडित जी के संपर्क में जो भी आया है, वह अगर उन्हें प्रभावित कर सका है, तो वह उनके जीवन की घटनाओं और प्रसंगों का एक अंग बनकर इन संस्मरणों में अमर हो गया है। केवल सभ्य समाज के व्यक्तियों ने ही उनकी लेखनी का प्रसाद नहीं पाया, बल्कि कई डाकू भी उसका पात्र बने हैं। उदाहरणार्थ, यमुना-चंबल के जंगलों में वर्षों तक अपना प्रभुत्व फैलाए रखने वाला डाकू मान सिंह इस पुस्तक के कई पृष्ठों में अपने अच्छे कार्यों के लिए प्रशंसा का पात्र बना है, जितना वह डाका डालने आदि के कुकृत्यों के लिए प्रसिद्ध

रहा है। कई ऐसे प्रसंग भी इस पुस्तक में लिखे गए हैं, जो पंडित जी के विचारों एवं विश्वासों की परतें खोलते हैं। 'दिशाशूल' शीर्षक के अंतर्गत वे लिखते हैं—"इन पंक्तियों के लेखक का भी दिशाशूल-संबंधी एक कटु अनुभव है। मैंने कभी दिशाशूल नहीं माना, पर जब तक माँ जीवित रहीं, तब तक उनकी आज्ञा का इस विषय में उल्लंघन नहीं किया। सोचा कि जब अपना कोई नुक़सान नहीं तब आज्ञा मानकर माँ को प्रसन्न करना उचित ही था। छोटा भाई स्व. जगन्नाथ भी दिशाशूल मानता था।" (पृ. 208)

कुल मिलाकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि *संस्मरण-सीकर* में पंडित जी के संस्मरणों की चरम परिणति उनके जीवन के अनेक अनजाने पक्षों के अनावरण तथा अनुभवों के बहुमुखी चित्रणों में हुई है और भाषा ने उन चित्रणों का पूरा-पूरा साथ देकर उन्हें रोचक बनाया है।

वे जीते कैसे हैं

सन् 1965 ई. में इस पुस्तक का प्रथम बार प्रकाशन हुआ था। अतः पंडित श्रीराम शर्मा की आत्मकथा के कई प्रसंग, जो उत्तरवर्ती थे, इसमें सम्मिलित किए गए तथा कुछ प्रसंग पुराने भी दुहराए गए। जो संस्मरण नवीनता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और इस पुस्तक में सम्मिलित किए गए हैं, वे हैं :

'दीनबंधु के अंतिम दिन', 'तमाखू लाओ', 'सड़क का एक दृश्य', 'स्व. रफ़ी अहमद किदवई', 'तीन परिचय', 'नयना सितमगर', 'स्व. राजबहादुर रुक्मांगद सिंह', 'स्व. कुँवर साहब', 'लड़की का पिता', 'दो पड़ोसी' तथा 'वे जीते कैसे हैं'।

'दीनबंधु के अंतिम दिन' में दीनबंधु ऐण्ड्रूज के संपर्क का प्रसंग हैं। पंडित जी ने इस संस्मरण का आरंभ इन शब्दों में किया है :

"साधु और महात्मा का सत्संग किसी अच्छी करनी का फल होता है। जब परमात्मा की कृपा होती है, जब किसी व्यक्ति के पापों का शमन होता है, तब मंगल-मय भगवान् की प्रेरणा से सांसारिक जीव साधु-सत्संग-रूपी सुरसरि में मज्जन कर पाता है।XX इन पंक्तियों के लेखक के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा गया, उसे जान से मार डालने के लिए।XX यह बात जनवरी 1940 ई. के प्रारंभ में समझ में आई कि दीनबंधु ऐण्ड्रूज के अधिक निकट लाने के लिए, उनकी कुछ सेवा के लिए पूर्व जन्म के किन्हीं पुण्य कार्यों के कारण, परमात्मा ने क़त्ल कराने की योजना बनाई। अपने शुभ कर्मों के कारण इन पंक्तियों के लेखक को कलकत्ता में रहकर *विशाल भारत* सँभालना पड़ा, ताकि उसे दीनबंधु ऐण्ड्रूज की कुछ सेवा

करने का अवसर मिले।XX जब सब बातों से ऐण्ड्रूज साहब अवगत हुए तो उनकी आँखें सजल हो गईं। और मुझे छाती से लगाकर उन्होंने कहा—'परमात्मा महान् है।'' (पृ. 38-39)

इसी प्रसंग में उन्होंने ऐण्ड्रूज के संग बिताए गए जीवन की स्थितियों पर प्रकाश डाला है। शांति निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के निवास के निकट ऐण्ड्रूज का निवास था। वे वृद्धावस्था में भी अपने हाथ से लेखन-कार्य करने को विवश थे। उस समय वहाँ आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी भी थे। हिन्दी भवन की हालत अच्छी न थी। पंडित जी को *विशाल भारत* की ओर से कलकत्ता में स्टेनो-टायपिस्ट मिला हुआ था। ऐण्ड्रूज के पास लेख, पत्र आदि लिखाने का कोई साधन न देख पंडित जी को बहुत बुरा लगा। वे प्रति शुक्रवार को अपना स्टेनो टायपिस्ट लेकर कलकत्ता से शांति निकेतन जाने लगे। वे वहाँ से मंगलवार की सुबह वापिस कलकत्ता जाते थे। उस समय पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी टीकमगढ़ महाराज के यहाँ थे। वे वहीं से पंडित श्रीराम शर्मा को *विशाल भारत* के संपादन में सहयोग देते थे।

पंडित जी ने इस संस्मरण में ऐण्ड्रूज की अंतिम रुग्णावस्था का चित्र अंकित करते हुए उनके साथ अपने भावनात्मक संबंधों का अत्यंत करुण और आस्थापूर्ण चित्र अंकित किया है। ऐण्ड्रूज उस समय 70 वर्ष के थे, जब भयंकर पेचिस रोग से ग्रस्त होकर कलकत्ता के अस्पताल में भर्ती हुए और फिर प्रोस्टेटग्रंथि की शल्य-चिकित्सा कराना भी अत्यावश्यक हो गया। पंडित जी उनकी इच्छा से कैमरा लेकर उनका फ़ोटो खींचने पहुँचे, तब तक उनकी शल्य-चिकित्सा की तैयारी हो चुकी थी। यह बात 30 मार्च 1940 की है। उन्होंने महात्मा गाँधी का तार पंडित जी को दिखाया। मजमून था :

''सफल ऑपरेशन के लिए हम सब प्रार्थना कर रहे हैं। इतवार को समाचार मिलने का प्रबंध कर रहा हूँ। प्यार। —मोहन'' (पृ. 49)

बापू अस्वस्थावस्था में उन्हें देखने अस्पताल भी आ चुके थे। सब लोगों की अपार सहानुभूति ऐण्ड्रूज के साथ थी। किन्तु होता वही हैं, जो ईश्वर को मंजूर होता है। अचानक 5 अप्रैल को वे समाधिस्थ हो गए। पंडित जी लिखते हैं :

''संट पाल गिरज़े में दीनबंधु का शव अर्थी पर सजा-सजाया रखा था। फूलों और हारों से अर्थी ढँकी हुई थी। मोमबत्तियाँ जल रही थीं, दिलों में तूफ़ान-सा उठा हुआ था। लार्ड विशप ने दीनबंधु के लिए प्रार्थना की।XX लुटे से हम लोग घरों को लौटे। ऐण्ड्रूज साहब की सेवाएँ भारत के लिए महान हैं। उनका बख़ान

करने का यह अवसर नहीं, पर जिसने महात्मा गाँधी के जीवन को दो बार बचाया, उससे हम उऋण कैसे हो सकते हैं?" (पृ. 50)

देशबंधु ऐण्ड्रूज के इस रेखाचित्र में पंडित जी के जीवन से संबंध रखनेवाले जो प्रसंग हैं, वे उनकी आत्मकथा एक संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

'स्व. राजाबहादुर रुक्मांगद सिंह' के शीर्षक से लिखा गया संस्मरण ऐण्ड्रूज के संपर्क से पूर्व का प्रसंग है, जब पंडित जी को अचानक कटियारी रियासत की नौकरी मिली थी। जून सन् 1932 ई. में पंडित जी को एक मित्र कलकत्ता के एक होटल में भोजन करते समय मिले और उनके कहने पर वे नौकरी के उद्देश्य से भवानीपुर (कलकत्ता) के एक मकान में राजबहादुर रुक्मांगद सिंह के पास गए। इस प्रसंग का जो वर्णन उन्होंने किया है, वह भी राजा के रेखाचित्र के साथ-साथ उनकी आत्मकथा का भी बहुत-सा भाग अनावरित करता है। वस्तुतः उस समय वे नौकरी करने की इच्छा लेकर वहाँ नहीं गए थे, इसलिए राजा के सामने अपने ये विचार व्यक्त कर बैठे :

"राजा-महाराजा ग़रीबों पर हुकूमत दिखाते हैं, पर सरकारी अफ़सरों के इशारों पर बंदर की भाँति नाचते हैं। वे नैतिक दृष्टि से बड़े डरपोक होते हैं। नतीजा यह होता है कि रियासत की नौकरी करनेवाले अपना व्यक्तित्व खो बैठते हैं। चौबीसों घंटे चाटुकारी, रागद्वेष और दलबंदी का वायुमंडल रहता है। व्यक्तित्व, विचार-स्वतंत्रता का कोई ख़याल नहीं करता। फलस्वरूप मनुष्य अपने को खो बैठता है। शरीर और रुपए से वह संपन्न हो सकता है, पर आत्मा से कोढ़ी और हेय।" (पृ. 119)

पंडित जी के ये वाक्य राजा पर अत्यंत अनुकूल प्रभाव डालनेवाले सिद्ध हुए और उन्हें 17 जुलाई 1932 ई. को कटियारी रियासत में पहुँचकर पद का उत्तरदायित्व सँभालना पड़ा। वहाँ उन्हें जो खट्टे-मीठे अनुभव हुए उनका भी इस संस्मरण में राजा साहब के साथ-साथ, उन्होंने चित्रण किया है। राजा साहब विलासी होते हुए भी अपने नौकर-चाकरों तथा प्रजा के लिए बहुत उदार और हितकारी थे। पंडित जी ने उनके सद्गुणों के कारण ही कटियारी की जनता के हित में अनेक कार्य किए, किन्तु उनके सुधारों से जिनके हितों पर आँच आई, वे उनके प्राणों के ग्राहक बन गए।

कुँवर साहब के रेखाचित्र में भी पंडित जी अपने जीवन के संस्मरणों के लिए अवकाश खोज ही लेते हैं। यथा :

"लज्जा से मैं गड़ गया कि मेरे कारण कुँवर साहब को कष्ट हुआ। बात यह थी कि आगरे का मेरा पता कुँवर साहब की मिलों का ही था और सन् 1927

से सन् 1932 तक आगरे में मेरे ठहरने की मुख्य बात यह थी कि वहाँ न ठहरने से कुँवर साहब बुरा मानते थे। मैं लोथियन-कमेटी के सदस्य मेजर मिलनर को भारतीय ग्रामों की दशा दिखलाने के लिए ले जाना चाहता था। मैंने उन्हें भी आगरे में अपना पता कुँवर साहब की कोठी का दे रखा था।" (पृ. 157)

वे जीते कैसे हैं पुस्तक के संस्मरण पंडित जी के जीवन के जो प्रसंग उनके संपर्क या अनुभव में आए व्यक्तियों के रेखाचित्रों के साथ प्रस्तुत करते हैं, उनसे उनकी जीवन-कथा को टुकड़ों-टुकड़ों में सँजोया जा सकता है। इस पुस्तक का अंतिम संस्मरण वृद्ध जनों की उस पीड़ा के हृदय-विदारक चित्र प्रस्तुत करता है, जो उन्हें अपने पुत्रादि के असमय अवसान के कारण झेलनी पड़ती है। वस्तुतः यह एक ऐसा संस्मरण है, जिसमें शर्मा जी के जीवन का अंतरंग अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने अपने कारागृह के प्रवास-काल में दो पुत्रों के और फिर तीसरे पुत्र के स्वर्गवास का वज्रपात झेला था। उनके हृदय में वेदना का जो ज्वार बार-बार उठता था, उसकी अभिव्यक्ति अन्य वृद्ध जनों की दुःखद आपबीती के साथ सहानुभूति से हुई है। एक चित्र है :

"तारबाबू ने विषाद से कहा, 'कक्का, पढ़ा तो जाता है, पर किसका पत्थर का दिल है, जो आपसे कहे कि आपका छोटा लड़का गुज़र गया।'

"अनभ्र वज्रपात हुआ। बूढ़े महाशय के जर्जर हृदय में गोली-सी लगी। आँखों के सामने अँधेरा छा गया और लड़खड़ाकर वह गिर गए।" (पृ. 171)

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में हँसते-रोते, खेलते-गाते, भाँति-भाँति के संघर्ष झेलते तथा संकटों से लोहा लेते पात्रों को पंडित जी ने अपने साथ लिया है और लेखनी की ऊर्जा के स्पर्श से अमर-अजेय बना दिया है। समाज के विभिन्न वर्गों से आए ये पात्र जितना उन्हें प्रभावित कर सके हैं, उससे भी अधिक, उनकी कला-कमनीयता का पानी चढ़ जाने के कारण पाठक को भी प्रभावित करते हैं। हमारे समाज में आज़ादी से पूर्व और उसके पश्चात् भी शोषण-परिपीड़न का जो चक्र चलता रहा है, उसे पंडित जी ने खुली आँखों से देखा और समझा है। यही कारण है कि उनके संस्मरण और रेखाचित्र अपनी प्रामाणिकता में भारतीय जनता का जीता-जागता इतिहास बन गए हैं और उसके साथ-साथ उनके अपने जीवन की भी हृदय-स्पर्शी कथा कहते हैं।

हिन्दी-साहित्य में ऐसे लेखक बहुत कम है, जो पंडित श्रीराम शर्मा के समान भाषा की सहज शक्ति रखते हैं। ग्रामीण परिवेश से नगरों तक विस्तृत जीवन की सहज भाषा, जिसमें रोज़मर्रा के मुहावरे और शब्द एक हृदय-स्पर्शी प्रवाह में बहते-से चले आते हैं--पंडित जी के संस्मरणों की अमूल्य संपत्ति है। इसी संपत्ति

के बल पर वे अपने चिन्तन-मनन की गहरी आंतरिक परतें खोलते हुए पाठक की मनीषा से तादात्म्य स्थापित करते हैं। फलतः संस्मरण या रेखाचित्र लिखते हुए भी वे कल्पना के लोक में भी जब चाहते हैं, तब चुपचाप उतर जाते हैं और जब चाहते हैं, तब दर्शन के शिखरों पर चढ़ जाते हैं, किन्तु पाठक को कहीं भी उनके कथ्यों की ईमानदारी पर शक नहीं होता। उन्हें यदि बड़े-से-बड़े नेता में भी कोई बुराई दिखाई दी है, तो उसे छिपाया नहीं; और यदि समाज में उपेक्षित पात्र में कोई अच्छाई मिली है, तो उसे भुलाया नहीं। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण पंडित जी की इन पुस्तकों के संस्मरण हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

7

कहानियाँ और बाल-साहित्य

पंडित श्रीराम शर्मा के कई संस्मरण और रेखाचित्र उनकी वर्णन-शैली के कारण कहानी की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु कहानी नहीं हैं। उन्होंने जो कहानियाँ लिखीं, उनका प्रकाशन तो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में होता रहा, किन्तु स्वतंत्र पुस्तकाकार प्रकाशन नहीं हो सका। कुछ कहानियाँ, जो उनके लेखों और संस्मरणों या रेखाचित्रों के साथ पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं हैं, उनमें से तीन कहानियों का हम *बोलती प्रतिमा* के संदर्भ में उल्लेख कर चुके हैं। ये कहानियाँ हैं : 'गीली लकड़ियाँ', 'ऐमुन-तैमुन तिरकिटता' तथा 'शीर्षकहीन कहानी'। इनके अतिरिक्त निम्नांकित कहानियों का भी विशेष महत्त्व है :

1. संध्या और समाधि, *विशाल भारत* में प्रकाशित,
2. लाहौर की यात्रा, *सुधा,* 1933 ई.
3. दो क़ैदी, *सरस्वती, विशाल भारत,* 1949 ई.
4. भ्रातृ-युद्ध, *सरस्वती,* मई 1947

'दूर देश है जाना', 'उत्सर्ग', 'भूखा रोज़दार', 'हत्या', 'अभाव की पूर्ति', 'कलाकार' आदि कहानियों का महत्त्व इसलिए अधिक है, क्योंकि इनमें शर्मा जी के सामाजिक चिन्तन को विशेष स्थान मिला है। *सरस्वती* और *विशाल भारत* के पुराने पाठक जानते हैं कि इन कहानियों की कथ्य तथा शिल्प-गत विशेषताओं के कारण ही पंडित श्रीराम शर्मा उतने ही लोकप्रिय हो गए थे, जितनी लोकप्रियता उन्हें शिकार-संबंधी संस्मरणों और रेखाचित्रों से मिली थी।

पंडित जी का जन्म एक बड़े ज़मींदार परिवार में होने पर भी, बाल्यावस्था से ही अनेक प्रकार के संकटों और ग्रामीण संस्कारों में विधवा माँ की छत्रछाया में उन्हें अपना जीवन बिताना पड़ा था। उन्होंने ग़रीबी का नंगनाच अपने आस-पास बहुत सचेत होकर देखा था तथा उन अंधविश्वासों एवं रीति-रिवाजों से लोहा लिया था, जो सामाजिक जीवन के लिए कोढ़ थे।

यही कारण है कि उनकी सभी कहानियों में एक ऐसा समाज बोलता है, जो दलित, शोषित और कुरीतियों से ग्रस्त है तथा ग़रीबी की पीड़ाओं से मुक्ति पाने के लिए छटपटा रहा है। उनकी कहानियों के सभी पात्र समाज के उसी वर्ग से आते हैं, जो स्वाधीनता से पूर्व ग़रीबी की रेखा से नीचे थे और उसके बाद भी वे उस रेखा को लाँघकर आज़ादी की हवा में साँस न ले सके।

'शीर्षकहीन कहानी' की नायिका 'चमेली' नाम की एक दलित युवती प्रकृति के प्रकोप झेलती हुई हमारे सामाजिक जीवन के अत्यंत संवेदनशील करुण चित्रों में हृदय कँपा देनेवाले रंग भरती है। शर्मा जी की कहानी-कला की एक विशेषता है कि वे अपने पात्रों को जिन परिस्थितियों में दिखाना चाहते हैं, उनका अत्यधिक रोमांचक चित्र अंकित करते हैं। 'शीर्षकहीन कहानी' का भी आनेवाला कथ्य इस भूमिका पर स्थापित किया गया है :

''यमुना की ब्रजकेलियाँ, सरयू की अठखेलियाँ सरस्वती की अगोचरता और गदकारी सोनभद्र का फहराता हुआ सुनहरा चीर देखते ही बनता है; पर रामगंगा का भृकुटि-विलास और भावभंगी बेजोड़ ही है।xx गात की मझोली, भाव की गंभीर रामगंगा की छटा को बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, फ़र्रूखाबाद और हरदोई के ज़िलों में देखिए। हरित तृणां की झालदार साड़ी पहने, उभरे गात से फुदकती और मचलती, मुड़-मुड़ कर देखती और यौवन-वाढ़ में अनेक मस्त वृक्षों को बहाती रामगंगा एक विचित्र नदी है। अनेक मकानों को अपने गर्भ में रखती—भोजन-सा करती—मीलों तक खेतों को जलमग्न करती, मानवी नयी-नवेलियों से होड़ लगाकर वह गंगा से मिलने बढ़ती है।xx ऐसे ही प्रायद्वीपी एक गाँव कटोरा में रामगंगा के यौवन को लजानेवाली चमेली नाम की एक दलित युवती रहती थी।xx (पृ. 128)

इस चमेली के जीवन को शर्मा जी एक रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं; किन्तु वस्तुतः समस्त कथ्य पर ध्यान दें तो वह एक कहानी का ही स्वरूप है। बरसात की यातनाएँ तो चमेली, उसकी मुन्नी और पति तोता किसी प्रकार झेल लेते हैं, किन्तु वहादुरसिंह के, जो 'जैजैमऊ' रियासत का ज़िलेदार है, अत्याचार झेलना कठिन हो जाता है। तोता बीमार होने पर ज़िलेदार के राक्षसी व्यवहार का किस कदर शिकार बनता है, दीपावली पर सब घरों में दिए जले, किन्तु उसके घर अँधेरा ही रहा :

''खीलों और बतासों से बच्चों को प्रसन्न किया गया, किन्तु कटोरा में एक घर था, जिसमें अभी तक कोई दीया नहीं सँजोया गया था। उस झोंपड़ी की मालकिन चमेली किस बूते पर दीपक सँजोती, जब उसकी झोंपड़ी ओर हृदय का दीपक—उसका पति—तोता रात होने पर भी ज़िलेदार की आज्ञा से घास छील रहा था। लगातार दो दिन चौपाल की लीपापोती करने से उसका ज्वर से निर्बल शरीर फिर ज्वर-ग्रस्त

हो गया था; पर ज़िलेदार की कड़ी ताक़ीद थी कि अगले दिन प्रातःकाल ज़िलेदार और थानेदार के घोड़ों के लिए घास तैयार मिले, और चमेली को दो धड़ी आटा पीसकर देना था।" (पृ. 131)

शासन के अत्याचारों में पिसता यह चमेली-परिवार भारतीय सामाजिक जीवन की पीड़ाओं की दर्दनाक कहानी है। शर्मा जी ने अपनी अन्य कहानियों में भी अपने समकालीन समाज की पीड़ाओं और शोषण का चक्र चलानेवाली प्रथाओं-परंपराओं का अत्यंत सजीव भाषा में चित्रण किया है। प्रेमचंद के समान ही शर्मा जी भी ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं के अत्यंत जागरूक चित्रकार हैं।

'ऐमुन तैमुन और तिरिकिटता' रेखाचित्र को, जिसका उल्लेख *बोलती प्रतिमा* के प्रसंग में किया गया है, यदि एक कहानी के रूप में देखने की स्वतंत्रता का उपयोग किया जाए तो यह मानना असंगत न होगा कि उसकी अभिव्यक्ति में कहानी-कला की सभी विशेषताएँ समाहित हैं। पंडित जी इस रचना का प्रारंभ करते हुए लिखते हैं कि, "गधा-पचीसी उमर का एक ग्रामीण युवक वर्षा ऋतु में वर्दवान और कलकत्ता के बीच पैदल चला जा रहा था। संयुक्त प्रांत के पश्चिमी भाग का रहने वाला था। माता-पिता से लड़कर कलकत्ता की ओर काम की खोज में चल पड़ा था। नई उमर—सो भी गधा-पचीसी की। काम की लगन और कलकत्ता के आकर्षण ने उस युवक के शरीर में बिजली-सी दौड़ा दी थी। उसने ख़याल किया कि अब तो मैदान मार लिया है। साठ-सत्तर मील का चलना ही क्या। दो सपाटों में ही कलकत्ता जा पहुँचूँगा और घर लौटने का तब तक नाम न लूँगा, जब तक हज़ार दो हज़ार रुपये पल्ले न हो जाएँगे।" (पृ. 140)

आगे जो प्रसंग आते हैं, वे भी इसी प्रकार कहानी की संरचना का अटूट अंग बनते हैं। पंडित जी इस कहानी में समाज की जाति-गत कुरीतियों पर चुभते हुए व्यंग्य-वाण चलाते हैं। एक व्यक्ति हमारे समाज में तब तक स्वीकार्य होता है, जब तक वह हमारी जाति का होता है; किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी भिन्न जाति का बोध होने पर वह अस्वीकार्य हो जाता है। यह कितनी हास्यास्पद स्थिति है कि वह युवक स्वयं को ब्राह्मण बताता है और मार्ग में जिस बूढ़े के यहाँ टिकता है, वह स्वयं को ब्राह्मण बताकर अपनी पुत्री की शादी उससे कर देता है। पंडित जी आगे लिखते हैं :

"नई उमर और नया विवाह—गिलोय और नीम चढ़ी। वह युवक घरवालों को बिलकुल भूल गया। नवीन जीवन का जादू चढ़ गया। रहते-रहते वहाँ उसे कई महीने हो गए। एक दिन बूढ़ा और उसका दामाद बैठे हुक़्क़ा पी रहे थे कि सामने से एक आदमी आता दिखाई दिया। दूर से ही उस आगंतुक ने कहा—'अरे

बुलाकी! तू यहाँ?' उस आदमी को देखकर बुलाकी का रंग पीला पड़ गया। संकेत से उसे अलग ले जाकर कहने लगा—'पंडित जी, पाय लागूँ। मोपै बड़ो कसूर बनि गयौ है। अब हूँ गाम जाइबे लाइक ना रहौ। याँ मैंने एक बिरामन (ब्राह्मण) की लरकिनी सूँ (से) बियाउ कल्लओऐ।'

"पंडित जी—नउआ बारे तैंने बड़ौ बाप करौ।'xx बूढ़े ने आगंतुक और अपने दामाद की बातें तो नहीं सुनी, पर उनकी चेष्टा से उसे कुछ दाल में काला ज़रूर मालूम हुआ।" (पृ. 143)

आगंतुक से भेद खुलने पर जाति-गत भेद-भाव और ऊँच-नीच की समाज-रचना का वह पक्ष उभरता है, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन में आज भी खाइयाँ खोद रहा है। आज हमारी लोकतंत्री व्यवस्था को जाति-भेद की दीमक ही चाट रही है। पंडित श्रीराम शर्मा इस ख़तरे के प्रति आज से 65 वर्ष पूर्व, जब आज़ादी नहीं आ पाई थी, सावधान कर चुके थे। उन्होंने अपनी अन्य रचनाओं की भाँति अपनी कहानियों में भी बार-बार इस प्रकार की सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए हैं। जिन कहानियों के नाम हमने ऊपर गिनाए हैं, उनमें उनका यह राष्ट्रीय एकता का दृष्टिकोण व्यापक रूप में चित्रित मिलता है। उनकी हर कहानी ग्रामीण जीवन की उन सभी समस्याओं से जूझती है, जिनके कारण प्रकृति के स्वर्ग के बीच मनुष्य ने स्वयं अपने लिए नर्क का निर्माण कर लिया है। जहाँ तक पंडित श्रीराम शर्मा की कहानियों की भाषाभिव्यक्ति का प्रश्न है, वह बेजोड़ है। उनकी शब्दावली सटीक और हृदय पर सीधा प्रभाव डालनेवाली होती है। ग्रामीण जीवन का यथार्थ परिवेश उनकी सहज भाषा में जीवंत हो उठता है। उनकी सभी रचनाएँ उस सांस्कृतिक भारतीय शब्दावली को अपने भीतर सँजोकर रखे हुए हैं, जिनको अन्यथा अंग्रेज़ी भाषा मार रही है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, बाल-साहित्य के क्षेत्र में भी पंडित श्रीराम शर्मा की कहानियाँ बेजोड़ हैं। उन्होंने पशु-पक्षियों से लेकर, ठगों, धूर्तों, चोरों-डाकुओं, नेताओं, धार्मिक ढोंगियों आदि पर बहुत मनोरंजक, ज्ञानवर्धक, उपदेशात्मक तथा शिक्षाप्रद कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में उन्होंने बालक और किशोर की उम्र तथा प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखा है तथा वातावरण के साथ पात्रों को प्रस्तुत किया है। सबसे बड़ी बात उनकी कहानियों की रोचकता की है। *विशाल भारत* के प्रत्येक अंक में वे इस प्रकार की बाल कथाएँ मोटे टाईप में प्रकाशित कराते थे।

बालकों और किशोरों में अच्छे संस्कार डालने की दृष्टि से पंडित जी की कहानियाँ इतिहास, पुराण, लोक-कथा आदि के मध्य से गुज़रकर नए रूप में रोचक आकार ग्रहण करती हैं। ऐसी सभी कथाओं में विलक्षण कल्पना-शक्ति का प्रयोग मिलता है। 'चंपो के चाचा' (*विशाल भारत*, अक्तूबर 1957), 'मुल्ला बनाम बनिया'

(*विशाल भारत*, मार्च 1958), 'खिचपिच-खिचपिच' (*विशाल भारत* जुलाई 1957), 'चेला' (*विशाल भारत*, अक्तूबर 1957), 'मुतलक खिचड़ी' (*विशाल भारत*, सितम्बर 1958), 'जाट की चतुराई' (*विशाल भारत*, अप्रैल 1959) आदि कई कहानियाँ इस तथ्य का प्रमाण है। कई बाल-कहानियों में पंडित जी ने विशेष प्रकार के सामाजिक पात्रों का व्यंग्य-पूर्ण चित्रण किया है। उदाहरणार्थ, 'भारतपाल अफीमची' (दिसंबर 1960), 'भोंगामी मुंशी' (अगस्त 1960), 'सरपट्टामल' (अक्तूबर 1960), 'भोगा मियाँ का तर्क' (नवंबर 1960), 'कौन अधिक चालाक' (फ़रवरी 1958) आदि कई कहानियाँ देखी जा सकती हैं।

समाज की रूढ़ियों पर उनका बहुत ध्यान गया है। वे बच्चों को राष्ट्र की ऐसी पीढ़ी के रूप में देखना चाहते हैं, जो सुलझे हुए वैज्ञानिक मन-मस्तिष्क से घर-परिवार और समाज में आचरण कर सकें। 'बड़ा आदमी कौन' (*विशाल भारत*, सितंबर 1960), 'नेता' (जून 1957), 'कुलीन मिसरानी' (नवंबर 1958) 'खटका न होर मई' (1957) आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंडित जी ने हिन्दी में सत्यकथा लिखने की नींव भी डाली थी। बच्चों के लिए उन्होंने अनेक सत्यकथाएँ लिखीं, जो सदाचार-पूर्ण जीवन की ही शिक्षा नहीं देतीं, बल्कि अनेक संकटों से भी सावधान करती हैं। *विशाल भारत* में ऐसी जो कहानियाँ प्रकाशित हुईं, उनमें से कुछ प्रमुख हैं : 'चार असल ख़ानदानी' (फ़रवरी 1960), 'जनाना टिकट' (जून, 1963), 'अस्पताल के लिए दान' (जनवरी 1959), 'मोह' (अप्रैल 1960), 'दो दानी' (फ़रवरी 1940), 'वे आदमी थे' (जनवरी 1947) तथा 'दो सौदे' (मई 1947)।

पंचतंत्र, *हितोपदेश* आदि की कुछ कहानियों को भी बच्चों की भाषा में पंडित जी ने अधिक रोचक बनाकर लिखा था। कुछ ऐसी कहानियाँ भी उन्होंने लिखीं जो मध्यकालीन भारतीय इतिहास के पात्रों से संबंध रखती हैं।

बाल-साहित्य में पंडित जी की देन अद्‌भुत है। कहानियों के अलावा उन्होंने लेखों के रूप में भी उपदेशात्मक घटनाओं का वर्णन किया था, जो उस समय के सामाजिक प्रसंगों का बालोपयोगी विवरण हैं।

वस्तुतः पंडित श्रीराम शर्मा की सूझबूझ विलक्षण थी। वे सामान्य से सामान्य घटना में से कहानी का विषय खोज लेते थे और जीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक सरोकारों से जोड़कर कभी प्रौढ़ वर्ग के लिए और कभी बाल-किशोर वर्ग के लिए कल्पना के सहारे एक नया रचनालोक खड़ा कर देते थे। भाषा और शिल्प पर तो उनका असाधारण अधिकार था ही, जो आज भी उनके कथा-साहित्य को पठनीय बनाता है।

8

सर्जना के अन्य आयाम

पंडित श्रीराम शर्मा के प्रमुख ग्रंथों की समीक्षा के उपरांत हमारा ध्यान उनकी उन रचनाओं पर जाता है, जिनमें भारतीय समाज, संस्कृति तथा बहुमुखी राष्ट्रीय संपदा को चिन्तन—विवेचन का विषय बनाया गया है। इन रचनाओं में उनके यात्रा-संबंधी लेख, सेवाग्राम की डायरी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस एवं 'झाँसी की रानी' की जीवनी, कुछ कृषि संबंधी लेख प्रमुख हैं। इनमें से अंतिम पुस्तक की चर्चा पहले की जा चुकी है।

यात्रा साहित्य

यात्रा-संबंधी रचनाओं में पंडित जी की *कैलाश यात्रा* पुस्तक तथा *विशाल भारत* में छपे 'आगरा से सेवाग्राम', 'सेवाग्राम से पुणे, 'बम्बई से आगरा', 'आगरा से दिल्ली, तथा 'आगरा से शिलांग' लेख प्रमुख हैं। इन रचनाओं में प्रत्येक क्षेत्र की भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है। अनुभूति की गहराई, भाषा की मनोहारी शक्ति तथा शैली की विविधता से इन रचनाओं की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है। ये सभी लेख *विशाल भारत* के 1941 ई. के अंकों में प्रकाशित हुए थे, किन्तु तब से अब तक उनकी रोचकता में ऐतिहासिक परिवर्तनों ने कोई अधिक अंतर पैदा नहीं किया। वे अब भी उतने ही ताज़ा हैं, जितने पहले थे।

डायरी

हिन्दी में डायरी-साहित्य अधिक नहीं मिलता। पंडित श्रीराम शर्मा ने इस क्षेत्र को समृद्ध करते हुए कई लेख लिखे। कुछ लेखों का संकलन *सेवाग्राम की डायरी* के नाम से किया गया है। इस डायरी के कुछ लेख *विशाल भारत* में छपे थे। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से यह डायरी लिखी गई थी। सेवाग्राम में अपने तैंतीस

दिन के प्रवास का रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक वर्णन इस डायरी में मिलता है। वे सेवाग्राम में क्यों रहे, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखते हैं :

"सेवाग्राम में रहने का कारण था बापू के निकटतम संपर्क में रहकर आश्रम-जीवन बिताते हुए, उनके दैनिक कार्यक्रम की रूपरेखा, उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के व्यावहारिक रूप का परिचय प्राप्त करना। साढ़े तीन वर्ष के निरंतर परिश्रम से थके अपने शरीर में विश्व की विभूति, देश के महान्XX बापू की चरण-रज से अपने मन-मुकुट को स्वच्छ करना। जीवन में सिद्धांतों की अपेक्षा सजीव व्यक्ति अधिक प्रभावशाली होता है—जाग्रत ज्वालामुखी के समान।" (*विशाल भारत*, अक्तूबर 1941 ई.)

जीवनी

झाँसी की रानी पंडित जी की झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की जीवनी के रूप में लिखित पुस्तक है, जो सन् 1939 ई. में छपी थी, किन्तु अब अप्राप्य है। अंग्रेज़ी में भी *नेताजी सुभाषचंद्र बोस* नाम से जीवनी-संबंधी एक पुस्तक लिखी थी। जो सन् 1948 ई. में आगरा से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में, जैसा कि शीर्षक से भी स्पष्ट है, भारतीय क्रांति के महान् नायक सुभाष चंद्र बोस का जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया गया है।

कृषि-संबंधी लेख

पंडित श्रीराम शर्मा की कृषि-विज्ञान में गहरी रुचि तो थी ही, वे इस विषय के अद्‌भुत ज्ञाता भी थे। अतः समय-समय पर उन्होंने भारतीय किसानों की परिस्थितियों पर ही अनेक लेख नहीं लिखे, वरन् कृषि-संबंधी लाभदायक ज्ञान भी अपने लेखों द्वारा उन तक पहुँचाया। उदाहरणार्थ, जून 1932 ई. के *विशाल भारत* में उनका 'पपीता' लेख, सितंबर 1932 ई. के अंक में 'मटर' शीर्षक लेख, नवंबर 1932 ई. के अंक में 'हमारे ग्राम', 'गोभी और करमकल्ला' लेख कृषि की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने *विशाल भारत* में ही कई ऐसे लेख भी लिखे थे, जिनमें यह प्रतिपादित किया गया था कि खेती की ज़मीन कैसे अधिक उपजाऊ हो सकती है और कैसे बंजर बन जाती है। रेगिस्तानी ज़मीन को कृषि-योग्य बनाने तथा रेगिस्तान होने से बचाने के लिए भी उन्होंने कई लेख *विशाल भारत* में लिखे थे।

'पपीता' की खेती को वे बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे, इसलिए 'पपीता' नाम से एक स्वतंत्र पुस्तक ही उन्होंने लिखी थी। उन्होंने स्वयं पपीता-संबंधी कई प्रयोग

किए थे, जिनका उल्लेख उन्होंने किया है। वे पपीते के प्रकार, उसके बीज, बोने का समय, पौध लगाने की विधि, सिंचाई, निराई-गुड़ाई, जलवायु आदि से अपनी पुस्तक में पाठकों को परिचित कराते हैं। जून 1932 ई. के अंक में *विशाल भारत* में 'पपीता' पर उनका लेख छपा था और उसके पश्चात् नवंबर 1940 ई. के मधुकर में भी संक्षिप्त रूप में उसका मुद्रण हुआ था, जो पपीता-संबंधी पंडित जी के कृषि-ज्ञान की लोकप्रियता का प्रमाण है।

पंडित जी कोरे कल्पना-प्रधान साहित्य को रचना-कर्म की इतिश्री नहीं मानते थे। क़लम के साथ-साथ खुरपी-फावड़ा भी लेखक के हाथ में होना चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता थी। वे कहते थे कि "भारत कृषि-प्रधान देश है। उसकी 75 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर निर्भर है।xx यदि भारत के प्राथमिक और मुख्यतम उद्योग खेती-वारी की ओर समुचित ध्यान न दिया गया और वह खाद्यान्न में स्वावलंबी न हुआ तो कोई भी योजना और शासन नहीं चल सकता।" (*संघर्ष और समीक्षा,* पृ. 177)

कृषि की भूमि से जीवन-मरण का नाता है। शर्मा जी ने इसीलिए भूमि-सुधार संबंधी कई लेख भी लिखे; यथा—ज़मीन की कटन : एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न (*विशाल भारत,* अगस्त 1940), यू. पी. का नया आराजी क़ानून (*विशाल भारत,* जून 1940), पेड़ लगाइए (*मधुकर,* 1941 ई.) इत्यादि। इन सभी लेखों में रोचक शैली में कृषि-संबंधी ज्ञान को व्यावहारिक स्तर पर पाठकों के लिए सुलभ बनाया गया है। कृषि-विषयक शर्मा जी के कुछ अन्य महत्वपूर्ण लेख हैं :

1. चारे के दुर्भिक्ष का एक उपाय, *विशाल भारत,* सितंबर 1940 ई.।
2. भैंसों की मुर्रा नस्ल, *विशाल भारत,* सितंबर 1941 ई.।
3. हल्दी की काश्त, *विशाल भारत,* सितंबर 1957 ई.।
4. बबूल बनाम गेहूँ, *विशाल भारत,* जनवरी 1958 ई.।
5. खेतीबारी और पशुपालन, *विशाल भारत,* जून 1964 ई.।

इस प्रकार के अन्य कई लेख भी है, जो उन्होंने समय-समय पर लिखे थे और पत्र-पत्रिकाओं में छपे थे। उन्होंने आकाशवाणी से भी कृषि-संबंधी लेखों का प्रसारण किया था। यथा : किसान के मित्र और शत्रु पशु-पक्षी, फ़सलों का चूहों द्वारा नष्ट होना। ये दोनों लेख आकाशवाणी से प्रसारण के उपरांत *विशाल भारत* के क्रमशः फ़रवरी 1959 ई. तथा नवंबर 1963 ई. के अंकों में छपे थे।

स्पष्ट है कि शर्मा जी का लेखन जीवन के प्रति एक प्रतिबद्ध लेखन रहा है और उससे देश की सामाजिक समस्याओं का वह पक्ष अछूता नहीं रहा, जिसका सीधा संबंध देश की बहुसंख्यक जनता के सुख-दुःख तथा प्रकृति से है।

हमारी गायें

यहाँ इस पुस्तक का स्वतंत्र रूप से उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि 'गाय' भारतीय जीवन की कृषि-संबंधी आवश्यकता ही नहीं, उसका बहुत गहरा संबंध भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक तथा अर्थिक आस्थाओं से भी है। हर समझदार व्यक्ति गाय की उपयोगिता से ही परिचित नहीं, वह इसकी धार्मिक महत्ता का भी समर्थक रहा है और आज भी है। किसान के लिए गाय की किन-किन रूपों में उपयोगिता है, इसका सम्यक् ज्ञान कृपिशास्त्रियों को तो है ही, अर्थशास्त्री भी उससे कम परिचित नहीं। पंडित जी ने स्वाधीनता की प्राप्ति से पूर्व ही गाय-संबंधी कई लेख *विशाल भारत* में लिखे थे और विभिन्न दृष्टियों से जनता को गाय की महिमा समझाने की चेष्टा की थी। ये लेख निम्नांकित हैं :

(1) गाय बनाम भैंस, मार्च 1941 ई.।

(2) गाय की पहचान, अप्रैल 1941 ई.।

(3) अखिल भारतीय पशु-प्रदर्शिनी, मई, 1941 ई.।

(4) पशु बाल न खाने पाए, जून 1941 ई.।

(5) चारे में विटामिन 'ए' की कमी, फ़रवरी 1941 ई.।

(6) चारे में दुर्भिक्ष का एक उपाय, सितंबर 1940 ई.।

(7) गाय अधिक दूध कैसे दे, सितंबर 1941 ई.।

(8) गाय के बच्चों के साथ व्यवहार, जुलाई 1941 ई.।

(9) गायों की विभिन्न नस्लें, अगस्त 1941 ई.।

(10) गोवंश की उन्नति, नवंबर 1941 ई.।

इन्हीं लेखों का पुस्तककार *हमारी गायें* शीर्षक से प्रकाशन हुआ था। ये लेख हमारी सामाजिक समस्या 'ग़रीबी' के आवश्यक पक्ष से जुड़े हुए हैं तथा भारत में साम्यवादी व्यवस्था का भी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग हैं, क्योंकि कोई भी समाज तब तक ग़रीबी और शोषण के शिकंजे से बाहर नहीं आ सकता, जब तक उसी की आवश्यकताओं और समस्याओं के अनुसार समाधान नहीं खोजे जाते।

पंडित श्रीराम शर्मा गोवंश के वध के विरोधी थे। उनके विरोध का कारण केवल धार्मिक नहीं था, बल्कि सामाजिक आवश्यकता के रूप में भी था। वे गो-वध के लिए अंग्रेज़ों को प्रधानतः दोषी मानते थे, क्योंकि गो-मांस अंग्रेज़ों का भोजन था। उन्होंने स्पष्टतः लिखा था कि "दूध देनेवाले जानवरों के कटने को क़ानूनन जुर्म क़रार देने, प्रत्येक गाँव में चारागाह क़ायम करने और गोवंश की नस्ल अच्छी करने, कम दाम पर बढ़िया बैल और गायों को किसानों को बेचने और ग़रीबी

की वैतरणी को सुखाने से गो-वध बहुत कम हो सकता है।" *विशाल भारत*, 1937 ई.)

पंडित जी के गाय-संबंधी सभी विचार आज भी भारतीय जीवन के संदर्भ में सार्थक हैं और जनता की स्वीकृति चाहते हैं।

अनुवाद

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंडित श्रीराम शर्मा कई भाषाओं के विद्वान् थे। अंग्रेज़ी भाषा पर तो उनका असाधारण अधिकार था। विश्व-ख्याति के पाश्चात्य लेखक जिम कौर्बेट को जब उनकी योग्यताओं और लेखन-शक्ति का पता चला, तो उन्होंने पंडित जी से अपनी अंग्रेज़ी की कुछ रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद करने का आग्रह किया। वैसे भी पंडित जी को अन्य देशों की भाषाओं में लिखित श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवाद में बहुत रुचि थी। कौर्बेट के आग्रह पर उन्होंने उनकी निम्नांकित पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया :

1. *दि मैन ईटिंग लैपर्ड ऑफ़ रुद्रप्रयाग।*
   (हिन्दी अनुवाद—*रुद्रप्रयाग का आदमख़ोर*, जिसे पंडित जी ने मौलिक जैसा रूप दे दिया),
2. *टैम्पिटल टाइगर ऐंड अदर मैन ईटर्स ऑफ़ कुमायूँ* (हिन्दी अनुवाद—*देवालय का शेर तथा कुमायूँ के कुछ अन्य आदमख़ोर*,

इस पुस्तक के कुछ अंश विभिन्न लेखों के रूप में *विशाल भारत* में प्रकाशित किए थे, जिन पर उनकी अभिव्यक्ति-क्षमता और भाषा-शैली की ऐसी छाप है कि वे मौलिक रचनाओं जैसा ही अनुभव देते हैं।

पंडित जी ने कर्नल स्लीमैन, स्टीफ़ेन ज्वाइंग, तथा ख़्वाजा हसन निज़ामी की पुस्तकों के भी अनुवाद किए थे। उनमें प्रमुख हैं—*ठगों की बोली रमासिया, तरस न खाइए, अश्रुपात, नेहरू पर राधाकृष्णन्* के विचार।

ठगों की बोली रमासिया कर्नल स्लीमैन की ठगों को समाप्त करने के विषय में लिखी गई पुस्तक का छायानुवाद है। अंधविश्वासों से घिरे और परंपरा के रूप में ठगी करते आनेवाले ठगों को गिरफ़्तार कर जेल भेज दिया था। फलतः ठगी प्रथा का अंत हो गया था। स्लीमैन ने इस पुस्तक में ठगों और उनके सरदारों के नाम तथा बयान आदि रोचक शैली में दिए हैं। पंडित जी ने अपनी शैली से इस पुस्तक को पर्याप्त रोचक बना दिया है।

ख़्वाजा हसन निज़ामी की पुस्तक *बेगमात के आँसू* का पंडित जी ने *अश्रुपात* नाम से जो अनुवाद हिन्दी में किया, वह तो बेहद रोचक तथा मौलिक-जैसा बन

गया है। इस पुस्तक में बहादुरशाह ज़फ़र के परिवार की करुणामयी परिस्थितियों का हृदय-विदारक चित्रण है। मुग़ल साम्राज्य का अंत कैसा हुआ, बादशाह की गिरफ़्तारी और देश से निर्वासन, उसके साथ ही शाही ख़ानदान दुर्दशा—यह सब इस पुस्तक में शर्मा जी की भाषा और अनुवाद-शैली के कारण सजीव हो उठा है। वे इस पुस्तक के अनुवाद के पीछे अपने दृष्टिकोण को भूमिका में स्पष्ट करते हैं :

"उनकी (निज़ामी की) रचनाएँ उर्दू-साहित्य के अनमोल रत्न हैं; और साहित्य-सागर में सांप्रदायिक भाव, ऊँच-नीच और जाति-पाँति रूपी रोड़े सब विलीयमान हो जाते हैं। मानव-समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिए साहित्य एक अनुपम लड़ी है।"

पंडित जी द्वारा किए गए अनुवाद का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जो एकदम सहज-सरल अभिव्यक्ति के कारण मौलिक कृति के समान ही हृदय पर प्रभाव डालता है :

"अंग्रेज़ों द्वारा लुट जाने के बाद वहाँ ग़रीबी तथा फ़क़ीरी बाक़ी रह गई थी। जो राजकुमारियाँ तथा शाहजादियाँ पहले रथों में सवार होकर निकलती थीं, उन्हें अब अपनी जान बचाने के लिए पैदल चलना पड़ता था, उनके पैरों में छाले पड़ जाते, पर वे चलती जातीं। जो महलों में रहने की आदी थीं, उन्हें पेड़ की छाया तक नसीब न थी। खाने को कुछ न मिलता, फाके करने पड़ते।" (*अश्रुपात*, पृ. 38)

शर्मा जी ने अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं से कई लेखों का स्वतंत्र रूप से भी अनुवाद किया था, जो उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, किन्तु अब अनुपलब्ध हैं। पुस्तकों में भी *तरस न खाइए* तथा *नेहरू पर राधाकृष्णन् के विचार* पुस्तकें प्रकाशित तो हुई थीं, पर अब उपलब्ध नहीं हैं।

पंडित श्रीराम शर्मा की अनूदित रचनाओं की कई विशेषताएँ हैं। वे मूल लेखक की कृति को भाव और विचार के स्तर पर भली-भाँति समझकर उसे अपनी भाषा-शैली में ढालते थे। वे तथ्यों से छेड़छाड़ तो नहीं करते थे, किन्तु उन्हें अधिक रोचक बनाने के लिए अपनी भाषा की लाक्षणिकता और व्यंजना अवश्य प्रदान करते थे। अनुवादक के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह मूल लेखक की अनुभूतियों, भावनाओं और विचारों के साथ तादात्म्य स्थापित करे। पंडित श्रीराम शर्मा में यह विशेषता थी कि वे मूल रचना से हर स्तर पर गहरी आत्मीयता स्थापित कर लेते थे।

पूर्वोक्त रचना-विविधता इस तथ्य का प्रमाण है कि पंडित श्रीराम शर्मा

एक बहुज्ञ तथा संवेदन-शील बहुमुखी रचनाकार थे। समाज-हित में जो भी विषय उन्हें उपयुक्त लगते थे, उनकी तदनुकूल विधा में वे अभिव्यक्त करेते थे। उनकी कई फुटकर रचनाएँ *विशाल भारत, प्रताप, प्रभा, कर्मयोगी* आदि पत्र-पत्रिकाओं की पंजिकाओं में आज भी शोध-कर्मियों के श्रम की प्रतीक्षा कर रही हैं। साथ ही, जो पुस्तकें प्रकाशित नहीं हो सकीं, उनकी पांडुलिपियाँ तो अब उपलब्ध होना कठिन है, किन्तु उनके समकालीन विद्वानों के निजी पुस्तकालयों से उनके संबंध में कोई जानकारी मिल सकती है, जो हिन्दी साहित्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी सिद्ध होगी।

पत्रकारिता

पंडित श्रीराम शर्मा की रचनात्मक कृतियों का उल्लेख तब तक अधूरा है, जब तक उनके मुख्य लेखन-कर्म 'पत्रकारिता' पर प्रकाश न डाला जाए। उनके सेवा-क्षेत्र पर प्रकाश डालते हुए हम पीछे यह उल्लेख कर चुके हैं कि स्व. श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के आग्रह पर उन्होंने *प्रताप* दैनिक का संपादन-भार सँभाला था। उस समय अंग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीतियों का सबसे पहला शिकार *प्रताप* अख़बार था। स्वाधीनता-संग्राम में इस अख़बार की भूमिका विश्व-विदित है। श्री गणेश शंकर विद्यार्थी तो जेल में डाल दिए गए थे। उनकी नीतियों का निर्वाह करते हुए *प्रताप* का संपादन करना अपनी जान पर खेलना था। यह कठिन कार्य शर्मा जी ने पूरी निष्ठा से किया और जितने भी संकट आए, सबको बहादुरी तथा बुद्धिमत्ता से झेला। देश भर से क्रांतिकारियों के समाचार, नेताओं के उग्र विचार तथा अपने निष्पक्ष संपादकीय छापकर वे पत्रकारिता के उस समय अपेक्षित अपने कर्तव्यों का पालन करते रहे। उनका समाचार-चयन और संपादकीय टिप्पणियाँ पत्रकार के दायित्वों के अनुकूल होती थीं। गोपनीय ढंग से आनेवाले विशेष समाचारों की भी अपने ढंग से प्रामाणिकता का पता लगाकर ही वे उन्हें प्रकाशित करते थे। जब तक वे *प्रताप* के संपादक रहे, तब तक वे किसी भी प्रलोभन में नहीं पड़े। जब सरकार के षड्यंत्र से *प्रताप* पर मानहानि का अभियोग चला और विद्यार्थी जी को सज़ा हो गई, तब भी उनके मन में *प्रताप* के प्रति भावनात्मक समर्पण था, किन्तु दुर्भाग्य से उसका दैनिक संस्करण बंद हो गया।

पत्रकारिता के लिए लेखक को विभिन्न रूपों में कार्य करना पड़ता है। पंडित श्रीराम शर्मा ने भी उन सभी रूपों में उस समय काम किया, जब 'प्रताप' बंद हो गया। टिहरी और कटियारी की नौकरी के समय वे एक सिद्धहस्त फ़ोटोग्राफ़र तथा संवाददाता के रूप में *योगी, सैनिक* आदि से जुड़े रहकर अपने विश्वसनीय

समाचारों से पाठकों को प्रभावित करते रहे। एक कुशल प्रबंधक पत्रकार के रूप में भी वे आगरा के दैनिक *सैनिक* से जुड़े तथा उसकी व्यवस्था में पंडित श्री कृष्णदत्त पालीवाल का हाथ बँटाया।

पंडित श्रीराम शर्मा का पत्रकारिता के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान *विशाल भारत* मासिक का दीर्घकाल तक संपादन करना है, जो उन्होंने अवैतनिक रूप से निभाया। *विशाल भारत* मासिक पत्र था, किन्तु हिन्दी-क्षेत्र में वह किसी भी दैनिक या साप्ताहिक से अधिक लोकप्रिय था। इस पत्र में पंडित जी की संपादन-कला का चरमोत्कर्ष मिलता है। वे पूर्ण मास के सभी मुख्य समाचारों को एकत्र कर उनमें से भी प्रमुख समाचारों का चयन करते थे और फिर उनके महत्त्व, औचित्य तथा प्रासंगिकता का गंभीर विश्लेषण कर अपना संपादकीय विभिन्न लघु शीर्षक देकर लिखते थे। यही कारण था कि *विशाल भारत* के संपादकीय 20-25 पृष्ठों तक लंबे हो जाते थे। पाठक उनके संपादकीय लेख पढ़कर प्रशंसा के पत्र भेजते थे और कभी-कभी प्रश्न भी उठाते थे, जिनका शर्मा जी सटीक उत्तर देते थे। साहित्यिक रचनाएँ तो विविधता लिए होती ही थी, अतः सभी रुचियों के पाठक *विशाल भारत* से जुड़ गए थे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि *विशाल भारत* में पंडित जी ने स्थापित साहित्यकारों को जितना स्थान-मान दिया, उतना ही नवोदित लेखकों और कवियों को भी प्रोत्साहित किया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पंडित श्रीराम शर्मा की साहित्य-सेवाएँ बहुआयामी हैं। युग-युगांतर तक उनकी साहित्यिक महत्ता इतिहास के पन्नों पर अमर रहेगी।

9

चिन्तन और विश्वास

पंडित श्रीराम शर्मा के साहित्य पर अभी तक बहुत कम समीक्षात्मक कार्य हुआ है। वे अपने समकालीन पाठकों में जितने लोकप्रिय थे, उतने ही उस समय के विद्वानों में भी सम्मानित और प्रतिष्ठित थे। इसका एक कारण तो उनका शिकार-संबंधी संस्मरण-लेखन था और दूसरा कारण उनका मौलिक चिन्तन तथा जीवन के प्रति सुलझा हुआ दृष्टिकोण था। किन्तु उनके बाद की पीढ़ी उन्हें भूलती गई। इसका एक कारण यह भी है कि उनकी अनेक रचनाएँ देवदत्त शर्मा आदि उपनामों से भी निकली थीं, जो तत्कालीन परिस्थितियों की माँग थी, क्योंकि वे स्वाधीनता-आंदोलन में एक क्रांतिकारी के रूप में भाग ले रहे थे। कुल मिलाकर उनकी सभी रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव आया और उसी के कारण वे अपने मौलिक चिन्तन तथा विश्वासों को अधिक स्पष्टता और दृढ़ता से अभिव्यक्त कर सके। उनकी विचारगत निष्ठा उस समय के साहित्यकारों के लिए एक चुनौती बनी रही। अनेक प्रश्न उठे और उनके उत्तर पंडित जी की रचनाओं में ही प्रश्नकर्ताओं को मिलते रहे; किन्तु बाद की पीढ़ी उन उत्तरों को पचा नहीं पाई और उसने यही उचित समझा कि उन्हें भुला दिया जाए। यदि उनका चिन्तन मार्क्सवाद या पूँजीवाद से मेल खाता या भारतीय संस्कृति के परंपरागत चिन्तन में उनकी आस्था न होती तो शायद हिन्दी-साहित्य में उनका इतना विस्मरण न किया जाता। अस्तु।

किसी भी मौलिक चिन्तक को अधिक समय तक उपेक्षित नहीं किया जा सकता, ख़ासतौर से ऐसे चिन्तक को, जो अपनी और अपने परिवार की चिन्ता न करके, समाज, देश और मानवता के लिए अपने जीवन का सर्वस्व बलिदान कर दे।

यह संभव है कि समय और परिस्थितियों की धुंध में वह व्यक्ति नजर न आए, किंतु उसके चिन्तन और विश्वासों का प्रकाश किसी-न-किसी रूप में

और कभी-न-कभी अपनी चमक दिखा ही जाता है। पंडित जी के चिन्तन और विश्वासों की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है।

आज हम जिस रूप में अपने देश को देख रहे हैं, उसमें धर्म विवाद का विषय बन गया है, नैतिकता की होली जल रही है, भ्रष्टाचार के विभिन्न मार्ग खुल गए हैं, बलात्कार और दलित-पीड़न बढ़ रहा है, जातियों का अंतर्द्वन्द्व पराकाष्ठा पर है, लोकतंत्र तस्करों के चौराहों पर नीलाम हो रहा है। इस प्रकार की परिस्थितियों में मनुष्य की आस्था डगमगा रही है। हर व्यक्ति की वाणी पर मौन के ताले जड़ गए हैं, कोई भी अन्याय का विरोध करने को तैयार नहीं है। विचारधाराओं के टकराव में निर्णायिका बुद्धि अपना अस्तित्व खो बैठी है। ऐसी विषम परिस्थितियों में अगर हम पंडित श्रीराम शर्मा के सामने उनके चिन्तन और विश्वासों के संबंध में कुछ प्रश्न रखते हैं, और उत्तर भी पा लेते हैं, तो यह उनके लेखन-कर्म की सफलता ही मानी जानी चाहिए।

सभी जानते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के आरंभ में भारतीय धार्मिक पुनरुत्थानवाद की गहरी भूमिका थी। यह भूमिका महर्षि दयानंद सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ परमहंस, विवेकानंद, श्रद्धानंद आदि के धार्मिक निष्कर्षों का फल थी। इनमें से कोई भी महापुरुष भारतीय धर्म-परंपरा के विरुद्ध नहीं था। सभी संत-महात्माओं ने वैदिक-पौराणिक स्रोत से विकसित सनातन धर्म की विभिन्न धाराओं में समय के प्रभाव से आ जानेवाली बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया था। पंडित श्रीराम शर्मा पर इन सभी महापुरुषों का गहरा आध्यात्मिक प्रभाव था। फलतः उनके चिन्तन और विश्वासों में जो प्रौढ़ता और मौलिकता आई, वह सहज बोधगम्य तो थी, किन्तु अंधविश्वास या प्रतिबद्धता की नींव पर खड़े लोगों को रास नहीं आई। फिर भी पंडित जी अपने विचारों और विश्वासों पर अटल रहे। उन्होंने अपनी सभी रचनाओं में अपनी उसी अटलता की छाप छोड़ी है।

सबसे पहले हम पंडित श्रीराम शर्मा के धर्म-संबंधी चिन्तन और विश्वासों पर दृष्टि डाल सकते हैं। वे पक्के सनातनी ब्राह्मण हैं, किन्तु मूर्ति-पूजा में ढकोसलों की सीमा तक विश्वास नहीं करते। अपने बचपन से ही वे आर्यसमाज से प्रभावित हो जाते हैं और घर में अपनी माँ की मूर्ति-पूजा में कोई विघ्न डाले बिना वे बाहर जहाँ कहीं मूर्तियाँ मिलती हैं, उन्हें कुएँ में डाल आते हैं। यहाँ सनातन विचार और आर्यसमाजी विचारों का जो द्वंद्व है, वह आगे चलकर उनके लेखन में भी मिलता है। ध्यान देने पर पता चलता है कि वे दोनों के मध्य मानवीय संस्कारों का समास खोजते हैं। माँ से बड़ी देवी उनके लिए कोई नहीं, फिर उसकी आस्था

को कैसे खंडित करें? जहाँ तक मूर्तिपूजा का प्रश्न है, वे उस पर छाए स्वार्थी विश्वासों के विरोधी हैं और इस स्तर पर स्वामी दयानंद सरस्वती की ओर झुकते हैं। धर्म के संबंध में उनके विश्वास बहुत व्यापक हैं। वे 'स्व-धर्म' को जितना श्रेष्ठ मानते हैं, उतना ही वे दूसरों के धर्म का आदर करने की भावना रखते हैं। वस्तुतः वे उन धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध हैं, जो अन्याय का पोषण करतीं हैं। ये रूढ़ियाँ किसी भी धर्म में हो, उन्हें स्वीकार नहीं। वे मंदिर मस्ज़िद-गिरिजाघर—सभी में एक ही ईश्वर का दर्शन करते हैं। *गीता, कुरान* और *बाइबिल* में उन्हें समान विश्वास है; किसी भी प्रकार के ऐसे धार्मिक प्रदर्शन को वे समर्थन नहीं देते, जिससे समाज की शांति भंग होती है, मानवता का हनन होता है। धार्मिक कठमुल्लापन उनकी दृष्टि में धर्म की सीमा लाँघ जाता है और मनुष्य अहंकार का शिकार हो जाता है। वे कहते हैं : "कठमुल्लों के लिए असंप्रज्ञात-समाधि ठीक वैसी ही हैं, जैसे नासमझ सवर्ण हिन्दुओं के लिए हरिजनों का मंदिर-प्रवेश। कठमुल्लापन—आप उसे कट्टरता, रूढ़िवाद, प्रतिक्रियावाद कह सकते हैं—मन की वह अवस्था है जब मनुष्य यह समझने लगता है कि संसार की तीन-चौथाई अक्ल उसमें है और शेष एक चौथाई संसार में बँटी हैं।" (*प्राणों का सौदा*, पृ. 87)

पंडित श्रीराम शर्मा का धार्मिक चिन्तन समाज से जुड़ा हुआ है, किसी शून्य का विचरण नहीं। वे सर्वत्र समाज के हर वर्ग में आध्यात्मिक आधार पर समानता की खोज करते हैं और उससे अपने विश्वास को दृढ़ता प्रदान करते हैं। उनकी मान्यता है कि "गोरे और काले, पीले और भूरे चमड़ों के भीतर भगवान् की एक ही निधि—हृदय—छिपी हुई है। वे लोग बड़ी भूल करते हैं जो मानव-समाज के मूल स्रोत को भुलाकर बाह्य आडंबर को ऊँच-नीच की कसौटी बनाते हैं।" (वही, पृ. 32)

शर्मा जी कर्म करते हुए जीवन को जीना पसंद करते हैं, इसलिए उनके लिए ईश्वर की इस सृष्टि में जीवन और मरण में कोई अंतर नहीं है। वे कहते हैं :

"जो पैदा हुआ है, वह मरेगा। यदि जीवन बुरी चीज़ नहीं है, तो मृत्यु भी बुरी नहीं हो सकती। बच्चा पैदा होता है, फिर बढ़ता है, बढ़कर जवान और जवान से बूढ़ा होकर फिर उसी फेर—'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' में पड़ जाता है। पर मौत के भेद हैं। कोई हँसी-ख़ुशी सूली को हार बनाता है और कोई कीड़े पड़ के सड़ कर मरता है; तो कोई रणक्षेत्र में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त होता है। मरना सबको है, पर सद्गति विरलों की ही होती है।" (वही, पृ. 46)

धार्मिक आस्थाओं को पंडित जी मनुष्य के कर्म से जोड़ते हैं और फिर

उनका विश्वास कर्म-फल-भोग तक विस्तार पाता है। यथा :

"लेखक का अटल विश्वास है कि मानवी शक्ति से परे दैवी शक्ति है, जो इस जगत् का तथा मनुष्य के भाग्य का संचालन करती है। मनुष्य अपने अहंकार व उद्दंडता में शक्तिशाली, व्रत-धीर और वीर बनता है। वह भूल जाता है कि कर्तव्य करना उसका काम है, फल की प्राप्ति उसके हाथ में नहीं है। दैवी शक्ति विधिवत् रूप से उन्नति और अवनति के ताने-बाने से भाग्य निर्माण-करती है।" (*संस्मरण-सीकर*, पृ. 111)

पंडित श्रीराम शर्मा के धार्मिक विश्वासों पर महात्मा गाँधी के विचारों का भी बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिए उनके चिन्तन की दिशा समाजोन्मुखी अधिक थी। गाँधी जी के ईश्वर-संवंधी जो विचार थे, वे शर्मा जी के विश्वासों में वेदोपनिषद से विवेकानंद तक की दीर्घ परंपरा में पहले ही स्थान बना चुके थे। गाँधी जी का मूल शस्त्र अहिंसा था, जिसे शर्मा जी ने भी अपनाया था, किन्तु वे इस विषय में गाँधी जी से कुछ भिन्न विचार रखते थे। उनकी अहिंसा निरपराध के लिए थी, किन्तु अपराधी के प्रति कायर बनकर समर्पित होना उन्हें पसंद नहीं था। यों तो गाँधी जी के अहिंसा-धर्म में भी कायरता और भय के लिए कोई स्थान नहीं था, किन्तु वे श्रीराम शर्मा के समान किसी भी स्थिति में हिंसा के पक्षधर नहीं थे। शर्मा जी ने समाज में अत्याचार करने वाले 'पर-पीड़क' का वध उचित वतलाया है। अपने इसी दृष्टिकोण के आधार पर वे नर-भक्षी पशुओं, जल-जंतुओं आदि का वध उचित ठहराते हैं। एक प्रसंग में वे कहते हैं :

"मैं अपने-आपको हिंसा से मुक्त नहीं समझता; पर इस पाप को मेरे मत्थे मढ़नेवाले वे लोग नहीं हो सकते, जो रात-दिन ब्याज लेने की चिन्ता में लगे रहते हैं। अच्छा यह बताओ कि गाय के भक्षक को मारनेवाला पापी है या धर्मात्मा?" (*शिकार*, पृ. 138)

वे आगे कहते हैं कि वह लाला बेचारा हिंसा और अहिंसा के गहन तत्त्व को क्या समझे? वह क्या जाने कि कभी-कभी हिंसा भी अहिंसा होती है। वह क्या जाने कि गाय के जब लाखों कीड़े पड़ जाते हैं, तव गाय की रक्षा के लिए उन कीड़ों को मार देते हैं और न साधारण व्यक्ति से यह समझने की आशा की जाती है कि हिंसा के मानी मानसिक कष्ट के भी हैं।" (*शिकार*, पृ. 139)

धर्म के लक्षणों में से 'सत्य' को भी गाँधी जी ने वहुत महत्त्व दिया है, दया-क्षमा भी उनकी आध्यात्मिक साधना का अंग रहे हैं। पंडित श्रीराम शर्मा के धार्मिक चिन्तन पर गाँधी जी के, सत्य, दया, क्षमा आदि का भी गहरा प्रभाव था। झूठ से उन्हें बेहद घृणा थी। त्याग-तपस्या को वे मानव-जीवन का आधार

मानते थे, किन्तु उनकी दया-क्षमा की नीति या त्याग-तपस्या अन्याय और अत्याचार सहने के लिए नहीं थी। वेदों से लेकर *रामायण, महाभारत* और पुराणों तक उनकी गहरी दृष्टि गई थी और समस्त भारतीय दर्शनों का चिन्तन करके उन्होंने धर्म के लक्षणों पर जमी समय की काई को साफ़ करके अपने विचारों का पाथेय बनाया था। उन्हें इस बात का दुःख था कि हम व्यक्तिगत ही नहीं, राष्ट्रीय अपमान को भी कायर बनकर सह लेते हैं। वे ऐसे कायरों को पशुपक्षियों से निम्न स्तर का प्राणी मानते हैं, कहते हैं : "अपमान को सह जाना अथवा अपमान का उत्तर न देना या मन-मसोस कर रह जाना, मनुष्य-योनि को छोड़ और किसी योनि का धर्म नहीं है।" (*शिकार*, पृ. 4)

पंडित श्रीराम शर्मा के धार्मिक विचार एकांगी नहीं है। वे व्यक्ति और समाज के अंतः संबंध की तलाश मानवता में करते हैं। वे न तो वैचारिक वाणी-विलास पर आधारित किसी 'वाद' का समर्थन करते हैं और न किसी ऐसे धर्मग्रंथ को प्रमाण मानते हैं, जो मनुष्य के ऊपर अत्याचार करने की प्रवृत्ति का समर्थन करता है। वे ऐसे साम्यवाद के साथ नहीं, जो किसानों-मज़दूरों को आंदोलन के विध्वंसकारी रास्ते तो दिखलाता है, किन्तु उनकी रोज़ी-रोटी का प्रबंध नहीं कराता। वे भाँति-भाँति से शोषण में रत पूँजीवाद की उस विचारधारा के सख़्त दुश्मन हैं, जो ऊँची-ऊँची आध्यात्मिक बातों में ग़रीबों को उलझाता है, किन्तु उनके पीठ से चिपके पेटों में अन्न के दो दाने नहीं डाल सकता। भारत की अस्सी फ़ीसदी ग्रामीण जनता की ग़रीबी के करुण दृश्य उनकी लेखनी का विषय बनते हैं और उन्हीं दृश्यों में उनका चिन्तन जीवन के रहस्य खोजता है। पहाड़ी जंगली गाँव के इस बूढ़े का दृश्य इसका साक्षी है :

"बूढ़ा एक छोटी-सी भग्नावशेष कुटिया में रहता है। कुटिया के सामने एक छोटा-सा बाड़ा है। उसी में उसके पशु बँधते हैं। दो छोटे बैल, दो गाएँ—जो बाघ द्वारा मारी गईं—और एक गाय का बच्चा, हल और थोड़ा-सा बीज बस, यही उसकी पूँजी है। बर्तनों में तवा, करछी, पतीली, थाली, तीन गिलास और दो लोटे हैं। कपड़ों में—बुढ़िया जो कुछ पहने है—एक जीर्ण-शीर्ण कुर्ता, एक पैबंददार पहाड़ी धोती है और नाक में सौभाग्य का चिह्न पीतल की नथ है। बूढ़ा एक लँगोट पहने और हाथ में हुक़्क़ा लिए—जिसको उसके दादा ने देहरादून में मोल लिया था...।" (वही, पृ. 34)

इस बूढ़े की जो समस्याएँ हैं, वे ही समस्याएँ समस्त पहाड़ी जीवन की हैं। पहाड़ी गाँवों की दुर्दशा के अनेक चिह्न पंडित श्रीराम शर्मा के चिन्तन को नई दिशा देते हैं। मैदानी गाँवों में तो वे जन्म से ही रचे-बसे हैं और किसानों

की दुर्दशा पराधीनता के समय से स्वाधीनता के प्रकाश तक देखी है। इस दुर्दशा ने उनके चिन्तन और विश्वासों को बेहद आहत किया है। नेताओं के प्रति उनका मोह-भंग हुआ है और साहित्यकारों की अवसरवादिता ने उनके विश्वासों को विभिन्न रूपों में तोड़ा है। वे कहते हैं :

"xx आज़ादी के बाद नेतागीरी न केवल प्रतिष्ठा का साधन है, वरन् जीविका का भी एक साधन बन गई है। राज्यों की विधान सभाओं में पहुँचने के लिए तीन-तीन कौड़ी के आदमी तिकड़म के सहारे सफल हो जाते हैं। एम. एल. ए. और एम. पी. बनकर कई-कई सौ मासिक पाते हैं, सगे-संबंधियों को नौकरी दिला सकते हैं, सरकारी नौकरों पर रौब जमा सकते हैं। ऐसी दशा में सत्ता का ख़ून उनकी दाढ़ों में लग जाए तो आश्चर्य ही क्या है! देशवासियों का अधिकांश समय चुनावों में ही जाता है। गाँधी जी ने रचनात्मक कार्य को राजनीति की आधारशिला माना था। राजनीतिक स्वतंत्रता साध्य नहीं थी, एक साधन मात्र थी—प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान और विकास के लिए। गाँधी जी ने राष्ट्रनिर्माण और समाज निर्माण की भित्ति को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया था। छुआछूत तथा ऐसे ही अन्य सामाजिक कलंकों को मिटाने का प्रयत्न किया था।xx राजनीतिक दलबंदी, बिरादरीवाद और गुंडागर्दी का बोलबाला है। फूट डालने के लिए जो काम देहात में अंग्रेज़ नहीं कर सके, वे इन पंचायतों ने कर दिए।" (*संघर्ष और समीक्षा*, पृ. 168)

शर्माजी ने आज़ादी के लिए जो लड़ाई काँग्रेस के झंडे के नीचे लड़ी थी, उसी काँग्रेस के विषय में उन्हें कहना पड़ा था कि "काँग्रेस का भविष्य भी कुछ उज्ज्वल नहीं दिखाई देता।xx हँसकर महाप्राण बापू बोले—'काँग्रेस डूब रही है, वह बहुत बड़ी संस्था है। शायद कोई रास्ता बचने का निकल आए या उसे तोड़ना भी पड़े।xx अब उनकी बात शहादत के वर्षों बाद भी हमारे कानों में गूँज रही है। काँग्रेस का जन-संपर्क मिटता जाता है।xx देहातों में शासन के प्रति न श्रद्धा है न भय। अराजकता का ज्वर तीव्र होता जाता है। राजनीतिक गुंडागर्दी बढ़ रही है। मंडलों में अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो पुलिस की, तहसील की, नियोजन विभाग की दलाली करते हैं।" (वही, पृ. 169)

आज से कई दशक पूर्व लिखित रूप में पंडित जी का यह चिन्तन एक ऐसा दस्तावेज़ है, जो देश की अस्सी फ़ीसदी ज़नता की आज़ादी पर होनेवाले प्रहारों का पर्दाफ़ाश करता है तथा किसानों-मज़दूरों की दुर्दशा के अनेक दृश्यों का साक्षी बनता है। उन्होंने अपना विश्वास इन शब्दों में व्यक्त किया है :

"मनुष्य में जब तक नैतिकता और नागरिकता नहीं आएगी, तब तक उसका विकास संभव नहीं। नैतिकता बाज़ार में नहीं बिकती, उसका प्रारंभ घर में होता

है। जिस व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में नैतिकता और नागरिकता नहीं है, वह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। बिना नैतिकता और नागरिकता की भावना के समाज-कल्याण और निर्माण बालू की भीत के समान है।" (वही, पृ. 171)

आज देश में बाज़ारवाद बढ़ रहा है। सरकारी संस्थाएँ कमज़ोर हो रही हैं और कंपनियों की दादागिरी चरम सीमा पर है। बेकारी-बेरोज़गारी का तांडव नृत्य आँखों के सामने है। पंडित जी ने कई दशक पहले ही इस खतरे से सावधान कर दिया था : "भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में गाय आर्थिक व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु है, झूठी पूजा और कोरी भावना के लिए नहीं, वरन् उससे अधिक दूध प्राप्त करने के लिए। साथ ही गृह-उद्योगों और लघु उद्योगों के बिना न तो इस देश की बेकारी दूर होगी और न आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति हो सकेगी। गाँव वाले कपड़ा, चीनी, तेल आदि के लिए शहरों की ओर भागते हैं। यदि देश की 75 प्रतिशत आबादी को स्वावलंबी बनना है तो यह प्रयास होना चाहिए कि जो काम घर हो सकता है, वह गाँव में न हो, जो गाँव में हो सकता है वह शहर में न हो। किसान की ख़ून की कमाई का अधिकांश भाग छिन जाता है।xx हमारा अटल विश्वास है कि गाँधी-मार्ग पर चलने से ही देश की समृद्धि संभव है। उन्हीं के मार्ग द्वारा भारत की स्वतंत्रता विश्व के लिए कल्याणकारिणी हो सकती है।" (वही, पृ. 171-72)

पंडित श्रीराम शर्मा ने यह विश्वास सन् 1954 ई. में महात्मा गाँधी की पुण्य तिथि पर व्यक्त किया था। तब से अब तक पूरी आधी शताब्दी बीत चुकी है, किन्तु उनके चिन्तन और विश्वास का सत्य नहीं बदला है। *प्राणों का सौदा* में वे कहते हैं कि "तालों और पोखरों के अचल पानी के समान अपने ही में केन्द्रीभूत—अपने ही लिए संग्रह करने की भावना में विनाश के कीटाणु स्वतः ही रहते हैं। केवल अपने लिए संग्रह की भावना और अपनी विभूति को दूसरों में बाँटने के अभाव-जन्य दोष—जिन्हें दूषित पूँजीवाद के दुष्परिणाम भी कह सकते हैं—जीवन के अनेक पहलुओं में फैल गए हैं। फलस्वरूप एक ओर विलासिता की वैतरणी बह रही है, तो दूसरी ओर दारुण दरिद्रता की प्रचंड ज्वाला मानव-पुतलों को जला रही है। विलासिता-वैतरणी में गोते खानेवालों के हृदयों में बच्चों के रुदन, ग़रीबों के क्रंदन और पीड़ितों की चीत्कार से चोट नहीं लगती। दूषित पूँजीवाद के दो यमों ने—विलासिता और घोर दरिद्रता ने—त्याग, सेवा-भाव और सिद्धांत के लिए मर मिटने की आकांक्षा रूपी धवल शिखरों को ढँक-सा लिया है।" (पृ. 109)

शीर्षस्थ पत्रकार पंडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने लिखा था कि, "हर्ष की बात है कि श्रीराम जी ने शहर को छोड़ कर ग्राम-जीवन को फिर अपनाने का निश्चय करके फ़ीरोज़ाबाद से (जिसे वह चूड़ीनगर कहते हैं) छह मील दूर अपनी कुटी का निर्माण कर लिया है। यह समाचार आस-पास के भेड़ियों के लिए—निकटस्थ जंगली भेड़ियों और फ़ीरोज़ाबाद के शहरी भ्रष्टाचारी भेड़ियों के लिए भी—अत्यंत अशुभ है। श्रीराम जी का सारा क्रोध अब नष्ट-प्राय ज़मींदारी प्रथा से उतर कर औद्योगिकता पर आ गया है और यदि उनको कहीं अहिंसात्मक तोपें मिल जाएँ तो वह हमारे नगर फ़ीरोज़ाबाद को धराशाई किए बिना न रहें।" (*वे जीते कैसे हैं* की भूमिका, पृ. 20)

उपर्युक्त उद्धरण यहाँ देने का हमारा उद्देश्य यही है कि पंडित जी का मूल चिन्तन देश की उस ज़नता पर केन्द्रित था, जिसके लिए आजादी आई है। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक देश से ग़रीबी नहीं मिटती, बेरोज़गारी दूर नहीं होती, भ्रष्टाचार के आधार नष्ट नहीं होते तथा नैतिकता और नागरिकता लोगों के आचरण का अनिवार्य अंग नहीं बनती, तब तक देश की उन्नति नहीं हो सकती, न जन-जीवन में सुख-समृद्धि आ सकती है। वे भविष्य को बहुत दूर तक देख रहे थे तथा गाँधी-मार्ग में ही देश के विकास का स्वप्न साकार होने का दृढ़ विश्वास रखते थे। वे कार्ल मार्क्स के विचारों के विरोधी नहीं थे, किन्तु उन विचारों के आधार पर जब तानाशाही शासन-पद्धतियाँ विकसित होने लगीं तो उन पद्धतियों का उन्होंने विरोध किया, जो उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पंडित श्रीराम शर्मा का चिन्तन सर्वधर्म-समभाव, सामाजिक समता, शोषण-हीन शासन-व्यवस्था एवं विश्व-मानवता का पोषक है। उनके विश्वासों में रूढ़ियों एवं कुरीतियों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के पुनरुत्थानवादी पक्ष के पोषक हैं। उनकी मानवतावादी विचार-धारा में सत्य और अहिंसा का कल्याणकारी पक्ष प्रमुख है। वे परंपरा-पोषक होते हुए भी नवीन वैज्ञानिक दृष्टि के समर्थक हैं तथा उसके साथ वे नैतिक दायित्व पर बल देते हैं। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में उनके सक्रिय योगदान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है और वैसी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका भारतीय साहित्य को सांस्कृतिक तथा कल्याणकारी दृष्टि से संपन्न बनाने में भी रही है।

परिशिष्ट

1. पंडित श्रीराम शर्मा का साहित्य

(अ) पुस्तकाकार प्रकाशित ग्रंथ

1.	*शिकार*	1932 ई.। अष्टम संस्करण, 1997 ई.
2.	*बोलती प्रतिमा*	1937 ई.। पुर्नमुद्रण, 1996 ई.
3.	*प्राणों का सौदा*	1939 ई.। सप्तम संस्करण, 1997 ई.
4.	*रानी लक्ष्मीबाई*	1939 ई.
5.	*हमारी गायें*	1941 ई.
6.	*पपीता*	1941 ई.
7.	*नेताजी सुभाषचंद्र बोस* (अंग्रेज़ी में)	1948 ई.
8.	*जंगल के जीव*	1949 ई.। द्वितीय संस्करण, 1997 ई.
9.	*रुद्रप्रयाग का आदमख़ोर बघेरा*	1957 ई.
10.	*देवालय का शेर*	1957 ई.
11.	*संघर्ष और समीक्षा*	1959 ई.। पुर्नमुद्रण, 1996 ई.
12.	*भारत के जंगली जीव*	1961 ई.
13.	*वे जीते कैसे हैं*	1965 ई.। पुर्नमुद्रण, 1996 ई.
14.	*संस्मरण और आखेट*	1980 ई. (देहावसान के बाद)
15.	*हमारे पक्षी*	1980 ई. (देहावसान के बाद)
16.	*संस्मरण-सीकर* (प्रथम संस्करण)	1996 ई. (देहावसान के बाद)

2. पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तकें

1.	शब्दचित्र	(पुस्तकाकार अप्राप्य)
2.	नयना सितमगर	(पुस्तकाकार अप्राप्य)
3.	वनवासी	(पुस्तकाकार अप्राप्य)
4.	सेवाग्राम की डायरी	(पुस्तकाकार अप्राप्य)
5.	जेल-डायरी	(पुस्तकाकार अप्राप्य)

6. अश्रुपात (अनुवाद) (पुस्तकाकार अप्राप्य)
7. तरस न खाइए (अनुवाद) (पुस्तकाकार अप्राप्य)

3. पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की संख्या

एक हजार के लगभग है, जो पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुए हैं। ये लेख *विशाल भारत, प्रभा, योगी, सरस्वती* आदि पत्रिकाओं की फ़ाइलों में बंद हैं और गहन शोध की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

4. संपादकीय लेख—*विशाल भारत* के हर अंक में पंडित जी के सटिप्पण लंबे लेख छपे हैं, जो साहित्येतर विषयों पर भी हैं।
5. कहानियाँ—पंडित श्रीराम शर्मा की दर्जनों कहानियाँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध हैं। कुछ कहानियों का हम उल्लेख कर चुके हैं।
6. बाल-साहित्य—बालकों और किशोरों के लिए पंडित श्रीराम शर्मा ने अनेक कहानियाँ लिखीं थीं, जिनकी चर्चा हम यथास्थान कर चुके हैं। कुछ प्रमुख बाल-कहानियों की सूची इस प्रकार है।

1. खाय क्यों ना लेत, *विशाल भारत,* अगस्त, 1949 ई.
2. चूहा और मेंढक, *विशाल भारत,* सितम्बर, 1949 ई.
3. राजा के दो सींग, *विशाल भारत,* मार्च, 1957 ई.
4. समझौता, *विशाल भारत,* अप्रैल, 1957 ई.
5. दोनों एक हैं, *विशाल भारत,* अप्रैल, 1957 ई.
6. पूजा और दक्षिणा, *विशाल भारत,* जून, 1957 ई.
7. खिचपिच-खिचपिच, *विशाल भारत,* जुलाई, 1957 ई.
8. संध्या, *विशाल भारत,* अगस्त, 1957 ई.
9. चंपो के चाचा, *विशाल भारत,* अक्तूबर, 1957 ई.
10. चेला, *विशाल भारत,* अक्तूबर, 1957 ई.
11. चतुराई, *विशाल भारत,* नवंबर, 1957 ई.
12. कौन अधिक चालाक, *विशाल भारत,* फरवरी, 1958 ई.
13. भौंगाँव-भूषण, मार्च, 1958 ई.
14. मुतलक खिचड़ी, *विशाल भारत,* सितंबर, 1958 ई.
15. लाख रुपए की बात, *विशाल भारत,* जून, 1959 ई.
16. अहंकार—*विशाल भारत,* अक्तूबर, 1960 ई.
17. भरतपाल अफ़ीमची, *विशाल भारत,* दिसंबर, 1960 ई.
18. चार मूर्ख पंडित, *विशाल भारत,* जनवरी, 1961 ई.
19. तीन धूर्त, *विशाल भारत,* मार्च, 1961 ई.
20. चौबे जी की चालाकी, *विशाल भारत,* अप्रैल, 1961 ई.
21. मौलवी साहब का व्रत, *विशाल भारत,* सितंबर, 1961 ई.
22. अकबर और महाभारत, *विशाल भारत,* अक्तूबर 1961 ई.
23. जीजा की हँसी, *विशाल भारत,* नवंबर 1961 ई.

24. दिनों का फेर, *विशाल भारत*, जून 1962 ई.
25. बीरबल की परीक्षा, *विशाल भारत*, अप्रैल 1962 ई.
26. नंगा चौथ, *विशाल भारत*, सितंबर 1962 ई.
27. गीदड़ों की बोली, *विशाल भारत*, नवंबर 1962 ई.
28. सुखी कौन है, *विशाल भारत*, सितंबर 1963 ई.
29. तीन में न तेरह में, *विशाल भारत*, मार्च 1964 ई.
30. जाट और मुल्ला, *विशाल भारत*, अप्रैल 1964 ई.
31. उल्लू और उल्लू का पट्ठा, *विशाल भारत*, जून 1964 ई.

बच्चों के लिए लिखित सत्यकथाएँ

1. अस्पताल के लिए दान, *विशाल भारत*, जनवरी 1959 ई.
2. चार असल ख़ानदानी, *विशाल भारत*, फ़रवरी 1960 ई.
3. मोह, *विशाल भारत*, अप्रैल 1960 ई.
4. भोंगामी उपासक, *विशाल भारत*, मार्च 1962 ई.
5. चिम्पा, *विशाल भारत*, मई 1963 ई.
6. ज़नाना टिकट, *विशाल भारत*, जून 1963 ई.
7. गाँव की मर्यादा, *विशाल भारत*, जुलाई 1963 ई.
8. उपाधि की व्याधि, *विशाल भारत*, जुलाई, 1964 ई.
9. भक्त कुंभनदास, *विशाल भारत*, अगस्त, 1964 ई.

रेडियो वार्ताएँ शताधिक हैं। कतिपय प्रमुख वार्ताएँ

1. वन-जीवन का संरक्षण, फ़रवरी 1958 ई.
2. पशुओं के साथ अच्छा बर्ताव, अक्तूबर 1963 ई.
3. ब्रज का खान-पान, मार्च 1959 ई.
4. ब्रज की भाषा, अप्रैल 1958 ई.
5. ब्रज के जीवन में परिवर्तन-शिक्षा, दिसंबर 1958 ई.
6. कोयल, मई 1950 ई.
7. किसान के मित्र और शत्रु पशु-पक्षी, फ़रवरी 1959 ई.
8. फ़सल और चूहे, प्रसारणोपरांत *विशाल भारत*, नवंबर 1963 ई. में प्रकाशित।

2. पत्र-पत्रिकाएँ

प्रमुख पत्रिकाएँ, जिनको सहायक बनाया गया, *विशाल भारत*, *सरस्वती*, *हिन्दी अनुशीलन*, *प्रभा*।

पंडित श्रीराम शर्मा (जन्म : 23 मार्च 1896, मैनपुरी; निधन : 27 फ़रवरी 1967) एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जिसके एक हाथ में क़लम रहती थी और दूसरे हाथ में वंदूक़। हिन्दी साहित्य के इतिहास में शिकार-साहित्य, रेखाचित्र और संस्मरण-साहित्य के पुरस्कर्ता के रूप में वे प्रतिष्ठित हैं। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनकी दीर्घकालीन सेवा अविस्मरणीय है। साथ ही भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम में भी उनकी सहभागिता को भुलाया नहीं जा सकता।

दैनिक *प्रताप* के संपादक के रूप में पंडित श्रीराम शर्मा ने 1920 ई. में गणेश शंकर विद्यार्थी के आग्रह पर पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया। 1938 ई. में वे लोकप्रिय मासिक *विशाल भारत* के संपादक बने और 1952 ई. तक वे अवैतनिक रूप से यह सेवा-कार्य करते रहे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में वर्षों सपरिवार कारागारवास करनेवाले अप्रतिम क्रांतिकारी योद्धा पंडित श्रीराम शर्मा त्याग, बलिदान, ग्राम-सेवा, कृषि-ज्ञान, दलितों और किसानों की पक्षधरता, निर्भीक पत्रकारिता आदि के लिए जीवन भर सुविख्यात रहे।

पंडित श्रीराम शर्मा का साहित्य बहुआयामी है। हिन्दी गद्य के निर्माताओं में उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिकार साहित्य के प्रमुख लेखक और पत्रकार के रूप में उनकी ख्याति रही है, किन्तु जीवन के साहित्येतर विज्ञानों, कलाओं और भारतीय दर्शन एवं संस्कृति विषयक लेख भी उन्होंने लिखे हैं। उन्होंने सदैव मानव जीवन के कल्याण के लिए अपनी समस्त रचना-शक्ति का उपयोग किया। यही कारण है कि बालकिशोरों के लिए भी उन्होंने नियमित रूप से शिक्षाप्रद कहानियाँ लिखीं। उनके द्वारा उर्दू-अंग्रेज़ी से अनूदित कतिपय पुस्तकें मौलिक कृतियों के समान लोकप्रिय हुईं।

पंडित श्रीराम शर्मा की प्रकाशित कृतियों में *शिकार, प्राणों का सौदा, जंगल के जीव* (शिकार-साहित्य); *बोलती प्रतिमा* (रखाचित्र); *संघर्ष और समीक्षा, संस्मरण-सीकर, वे जीते कैसे हैं,* (संस्मरण) के अलावा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके कृषि-संबंधी लेख, डायरी, कहानियाँ और बालकिशोर साहित्य प्रमुख हैं।

प्रस्तुत विनिवंध के लेखक डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' (जन्म 5 जुलाई 1923, तहसील बाह, ज़िला-आगरा, उ.प्र.) सुपरिचित कवि, नाटककार एवं कथाकार हैं। आपके प्रकाशित शताधिक ग्रंथों में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी-संग्रह, निबंध-संग्रह एवं आलोचना, पाठालोचन तथा शोधग्रंथ शामिल हैं। आपने *सरस्वती संवाद* तथा *समीक्षालोक* पत्रिकाओं का संपादन भी किया है।

ISBN 81-260-2044-X

मूल्य : पच्चीस रुपये